श्रीमद्भगवद्गीता

मर्म और संदेश (12)



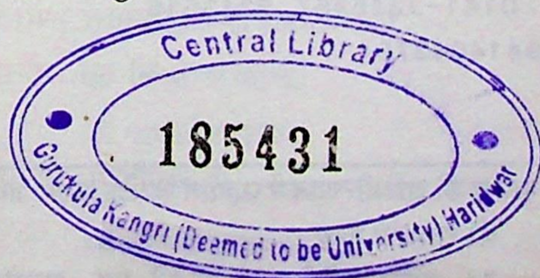
संपादक
दामोदर भगेरिया

श्रीमद्भगवद्गीता

मर्म और संदेश (12)

डॉ० राम स्वरूप आर्य, बिजनौर
की स्मृति में सादर भेंट–
हरप्यारी देवी, चन्द्रप्रकाश आर्य
संतोष कुमारी, रवि प्रकाश आर्य





संपादक

दामोदर भगेरिय



प्रकाशक :
'गीता से जुड़ें'
दामोदर भगेरिया
13, एम.जी.डी. मार्केट,
जयपुर- 302002
फोन : 0141-2212510
मो. : 9351317641

प्रथम संस्करण- **दिसम्बर 2016**

मूल्य : 100 रुपये

मुद्रक :
प्रिन्ट-ओ-प्रिन्ट
2079-80, बद्रीनाथ जी का चौक,
खजानेवालों का रास्ता, चाँदपोल बाजार, जयपुर-1
फोन : 0141-2315967, 2313516
मो.: 9414043784

इस पुस्तक की सामग्री-चयन में सहयोग के लिए इनका आभार :-

1. **श्री रामजस वैश्य**
   74, महात्मा गाँधी नगर, डी.सी. एम., अजमेर रोड, जयपुर,
   फोनः 2354949 मो.: 9414447714
2. **श्री बुलाकीदास भगत**
   आंचल अपार्टमेंट, फ्लैट नं. 303, ज्योति नगर, हाउसिंग बोर्ड
   कॉलोनी, गेट नं. 3, जयपुर-302005, मो.: 9024885892

अनुक्रमणिका

शुभाशंसा

परमात्मा ही जीवन के परम स्रोत हैं। 'जीवनं सर्वभूतेषु' और 'बीजं मां सर्वभूतानाम्' कह कर भगवान श्रीकृष्ण जीवन की दिव्यता की उद्घोषणा कर रहे हैं। सम्पूर्ण सृष्टि उनकी क्रीड़ा-स्थली है। देह धारण कर जीव अपनी शरीर-यात्रा प्रारंभ करता है और अनेक पड़ाव-मुकाम पार करते हुए अंततः परमात्मा के दिव्य धाम में लौटकर ही विश्राम पाता है। जीव इस यात्रा में अनेक बार गिरता-संभलता एवं फिर उठ कर चलता है। रास्ते के धूप-छांव, कांटे-फूल, शीत-घाम, कंकर-पत्थर, धूल-मैल उसके स्वरूप को धूमिल कर देते हैं। वह दिग्भ्रमित हो अपना गंतव्य भी भूल जाता है। वह भले ही परमात्मा से विमुख हो जाय, उनको भुला दे, पर दयासिन्धु परमात्मा की कृपा दृष्टि से वह कभी ओझल नहीं होता। उनके अदृश्य हाथ सदा उसे सहारा देते रहते हैं। इस प्रकार उनके लीला-सहचर के रूप में अपनी भूमिका का निर्वहन करते हुए वह उनके संरक्षण के आश्वासन में सदा निश्चिंत रह सकता है। श्रीमद्भगवद्गीता जीवन की अभय यात्रा का पथ प्रशस्त करती है।

श्रीभगेरियाजी के द्वारा संपादित "श्रीमद्भगवद्गीता : मर्म और संदेश" ग्रन्थमाला वैविध्यपूर्ण उच्च-स्तरीय आलेखों का बहुत ही प्रेरणादायी व प्रबोधक संकलन है। इसीका परिणाम है कि अल्पकाल में ही इसका बारहवां पुष्प प्रकाशित किया जा रहा है।

लोक-मंगल की कामना से उनका यह कल्याणकारी उपक्रम स्तुत्य है। प्रभु-कृपा से इसके माध्यम से साधकों का प्रबोधन हो और साधना-पथ पर उनकी यात्रा आगे बढ़े, इसी मंगलकामना के साथ श्री भगेरियाजी को शतशः बधाइयां!

म.म. देवर्षि कलानाथ शास्त्री
सदस्य, संस्कृत आयोग, भारत सरकार,
प्रधान सम्पादक 'भारती' संस्कृत मासिक पत्रिका,
सी-8, पृथ्वीराज रोड, सी-स्कीम, जयपुर-302001
फोन : 0141-2376008

अपनी बात

भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है कि 'ममैवांशो जीवलोके' यानी मनुष्य दिव्यता लेकर ही इस लोक में आया है। उसके भीतर छिपी हुई दिव्यता को जगाना यानी आत्म-साक्षात्कार ही मनुष्य जीवन का परम लक्ष्य है।

संसार के आकर्षणों में घिरकर मनुष्य भटक जाता है। "मैं" और 'मेरा' के झमेले में उलझ कर वह अपने लिये सुख-सुविधा के साधन जुटाने में लग जाता है। जीवन की गाड़ी हिचकोले खाते हुए आगे बढ़ती रहती है। इस बीच 'अतृप्ति' या 'अकुलाहट' सदा भीतर बनी रहती है। ठीक एक नदी की तरह, जो दायें-बायें, ऊपर-नीचे बेसुध सी तब तक दौड़ती रहती है जब तक समुद्र में अपने आपको न मिला दे। इसी प्रकार जीवन भी अपने उस परम स्रोत से मिलने के लिये आगे बढ़ता रहता है, सदा मार्ग ढूंढता रहता है।

जीवन यात्रा में पाथेय के रूप में चौदह वर्षों पूर्व 'गीता से जुड़ें' आध्यात्मिक पत्रिका प्रारंभ की गई। पत्रिका के अंकों में प्रकाशित श्रेष्ठ लेख पुस्तकाकार में 'श्रीमद्भगवद्गीता : मर्म और संदेश' शीर्षक से समय-समय पर प्रकाशित किये जाते रहे हैं। अब इसका बारहवां पुष्प सुधी पाठकों व विद्वानों के लिए प्रस्तुत करते हुए मुझे अपार हर्ष का अनुभव हो रहा है। देवर्षि कलानाथजी शास्त्री के प्रति मैं आभार प्रकट करता हूँ जिन्होंने पुस्तक की शुभाशंसा लिखने की कृपा की।

सुहृदय पाठकों के अमूल्य सुझावों का सदैव ही स्वागत है।

श्रीगीता जयन्ती-वि.सं. 2073
84, गीजगढ़ विहार, हवा सड़क,
जयपुर-302006

दामोदर भगेरिया
संपादक-'गीता से जुड़ें'
मो. : 9351317641

योगवासिष्ठ में कर्मबन्धन से छुटकारा

- श्री रघुराजजी बुंदेला
('कल्याण' से साभार)

सृष्टि का यह एक अटल नियम है कि जीव को अपने शुभाशुभ कर्मों का अच्छा या बुरा फल अवश्य भोगना पड़ता है–**अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्। इसके लिये जीव को एक जन्म से दूसरे जन्म में और एक परिस्थिति से दूसरी परिस्थिति में भी जाना पड़ता है।** जीव कर्म करने में तो स्वतन्त्र है, पर कर्मों का फल भोगने में वह परतन्त्र–सा ही है। यदि ऐसा है तो फिर कर्मों के बन्धन से छुटकारा कैसे प्राप्त हो? वर्तमान काल में हम अपने पूर्व कर्मों का फल भोग रहे हैं और वर्तमान काल के कर्मों का फल भविष्य में भोगना पड़ेगा। इसलिये क्या ऐसा समय हो सकता है, जबकि हम अपने कर्मों का फल भोगने के लिये जीवन धारण न करेंगे। योगवासिष्ठ के अनुसार हम कर्म–नियम के रहते हुए भी कर्मबन्धन से मुक्त हो सकते हैं।

योगवासिष्ठ का मत है– कर्म का वास्तविक स्वरूप मानसिक है। जगत् में जिस क्रिया को कर्म कहा जाता है, उसका असली रूप मन का वासनात्मक स्पन्दन है। मन का स्पन्दन ही कर्म का प्रेरक है। बाहर से दिखायी देने वाली कर्मेन्द्रियों की क्रिया को कर्म नहीं कहते। **अज्ञानी को अपने सब कर्मों का फल इसलिये भुगतना पड़ता है कि उसके कर्मों का सार वासना है। वासना के अभाव में ज्ञानी की सब क्रियाएँ फल–रहित हो जाती हैं। वासना से अनेक प्रकार के संकल्पों का उदय होता है और संकल्पयुक्त होने से ही बन्धन होता है। इसलिये संकल्प का त्याग करो।** अनासक्तमन वाला शुभ या अशुभ क्रियाओं को नित्यप्रति करता हुआ या त्यागता हुआ भी कभी बंधन में नहीं पड़ता। और जिस अज्ञानी ने मन से त्याग नहीं किया, वह शुभ या अशुभ क्रियाओं को न करता हुआ भी मन से संसार–समुद्र में निरन्तर डूबता ही रहता है। **मन का इस प्रकार का निश्चय कि यह वस्तु प्राप्त करने योग्य है और उसको प्राप्त करने की वासना और फिर चेष्टाएँ–तीनों कर्तृत्व कहलाते हैं।** कार्य का कर्ता होने के कारण ही जीव उसका फल भोगने वाला होता है। अज्ञानी जीव (कामना/वासना के कारण) चाहे **कर्म करे या न करे, तो भी वह कर्ता है, और वासना रहित होने से ज्ञानी जीव कर्म करते हुए भी अकर्ता है।** एक अकर्ता भी कर्ता बन गया है कामना के कारण, दूसरा कर्ता भी अकर्ता है–कामना रहित होने के

कारण। यह कामना सब कर्मों का, सब भावों का, सब लोकों का और सब गतियों का बीज है। ज्ञान द्वारा कामना त्याग देने से सब कर्मों का त्याग हो जाता है, सब दुःख क्षीण हो जाते हैं और सब बन्धन नष्ट हो जाते हैं। विवेक द्वारा शुभ और अशुभ दोनों प्रकार के कर्मों का नाश करना चाहिये। **बिना वासना के किसी दृश्य या प्रवृत्ति की उपस्थिति में बिना किसी कल्पना के शान्त होकर स्थित रहने का नाम कर्मत्याग है। जो ज्ञान द्वारा कर्मत्याग में स्थित हो गया है और वासना रहित जीवन्मुक्त है, वह सब बन्धनों से परे ही है। यही कर्मबन्धन से छुटकारा पाने का मार्ग है।**

चोर का निश्चय

-पूज्य स्वामी श्री कूटस्थानंदजी

एक महात्मा जी ठंड के दिनों में किसी नगर में पहुंचे। सूर्य डूब गया था, अंधेरा हो गया था। बर्फ गिर रही थी, वे एक मंदिर में गए। रात को वहाँ रुकना चाहते थे। मंदिर वालों ने कहा-किसी परिचित आदमी से अपना परिचय दिला दो। उस शहर में उनका कोई परिचित नहीं था। उन्हें मंदिर में जगह नहीं मिली।

मस्जिद वालों ने, चर्च वालों ने, धर्मशाला वालों ने भी वैसा ही कहा। आजकल बिना परिचय के कोई ठहराना नहीं चाहता। चोरी-डकैती हो जाती है।

उन्हें सड़क पर एक आदमी मिला। वह बोला-मैं आपका परिचय नहीं दे सकता, क्योकि मैं स्वयं यहाँ का एक प्रसिद्ध चोर हूँ। आप चाहो तो मेरे घर में रात काट सकते हो। वहाँ सब व्यवस्था है। **साधु को डर लगा कि लोग पूछेंगे कि कहाँ ठहरे हो तो क्या जवाब दूंगा। मजबूरी में रात को चोर के घर ठहरे। चोर को डर नहीं था कि साधु की संगत से मेरी चोरी छूट जाएगी। साधु डर रहा था। उसकी निष्ठा कमजोर थी।** सुबह वह चोर खाली हाथ लौटा पर प्रसन्न था। बोला, आज नहीं तो कल कभी-न-कभी तो दाँव लगेगा ही। वह साधु वहाँ एक माह रुका। उसने पाया कि चोर को एक माह तक कुछ नहीं मिला। लेकिन उसके चेहरे पर कोई उदासी नहीं, कोई निराशा नहीं। खिला हुआ चेहरा।

हम कुछ दिन पूजा करते हैं, प्रार्थना करते हैं, पर हमें विश्वास नहीं होता भगवान् पर। हम ढीले पड़ जाते हैं। पूजा-अनुष्ठान छोड़ देते हैं। चोर का निश्चय इतना दृढ़ और हमारा इतना कमजोर।

साधु ने उससे शिक्षा ली। जब उसे ब्रह्म का, आत्मा का साक्षात्कार हुआ, तो उसने उस चोर को प्रणाम किया, यह तेरी कृपा से हुआ। ○○

संसार में कैसे रहें?

-पूज्य स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज

❖ जिसने संसार में ठीक से रहना नहीं सीखा, उसमें से संसार की आसक्ति नहीं निकलेगी। संसार में रहना नहीं आया तो संसार से मुक्त होने की संभावना कभी नहीं आयेगी।

❖ तो संसार में रहना सीखने के लिए यह याद रखें कि **जिसने सुख को पसंद किया वह दुख से बच नहीं सकता। दुख से बचना है तो सुख से बचें। यही यहाँ पर रहने का सही तरीका है।**

❖ जो मनुष्य प्राकृतिक संपत्ति का दुरुपयोग नहीं करता है, उसके लिए शरीर और संसार की पराधीनता से ऊपर उठ जाने में बड़ी आसानी होती है क्योंकि प्रकृति उससे आनंदित होती है।

❖ अगर कोई प्रकृति की संपत्ति को नुकसान पहुंचाना छोड़ दे तो प्राकृतिक शक्तियों में बड़ी प्रसन्नता भर जाती है और उसके भी आगे उसने अगर प्रकृति की वस्तुओं पर अपना अधिकार जमाना छोड़ दिया तो प्रकृति में बड़ी उदारता आ जाती है।

❖ **पहले ऋषि-मुनियों के लिए गायों का दूध बिना दुहे बहता था।** वे उसे अपने पात्रों में ले लेते थे। वृक्षों में खूब फल लगते थे। ऐसा हमने सुना है।

❖ इस जगत की भूल-भुलैया से छूट करके, कोई सत्पथ का पथिक, कोई सत्यानुरागी अपने वास्तविक जीवन की ओर बढ़ रहा हो तो सारी प्रकृति उसके साथ आनंद मनाती है। इसका वर्णन शब्दों में संभव नहीं।

❖ **धन तो जड़ है, उसके लिए किसी सजीव आदमी से संबंध नहीं बिगाड़ना चाहिए। प्रेम बढ़ाओ, धन का लोभ छोड़ो।**

❖ जो मनुष्य संसार में रहते हुए, द्वन्द्व की घड़ी में सद्विचारों का सहारा लेकर सत्य को महत्व दे देता है, छूटने वालों को छोड़ देता है तो उसी समय उसके सद्विचार से आनंदित होकर उसके पांव के नीचे की धरती ऊँची हो जाती है। उसका बड़ा समर्थन है। प्रकृति में, परमात्मा में, समाज में, संतजनों में बड़ा समर्थन है।

❖ **आप केवल संकल्प मात्र कर लेवें कि अच्छे बनेंगे, अच्छे-अच्छे काम करेंगे तो समाज आपका विश्वास कर लेता है।** प्रकृति भी सहायता दे देती है। परमात्मा भी विश्वास करके खूब सहयोग देते हैं।

❖ जहाँ-जहाँ, जब-जब साधन काल में साधकों को आवश्यकता मालूम होती है तो समाज भी सहयोग देता है, प्रकृति भी सहयोग देती है, सन्त महापुरुषों की सद्भावना साथ देती है और प्रभु की कृपालुता का तो अंत ही नहीं है।

❖ **फिर भी जितना विकास होना चाहिए था, उतना नहीं हुआ तो एकमात्र कारण यही है कि हमने स्वयं अपना उतना विकास पसंद नहीं किया।** थोड़ी सज्जनता आ गई। थोड़ा अच्छा रहन-सहन बन गया। समाज में सम्मान पूर्वक जीने का इंतजाम हो गया तो उसी में हम अपने को फुसला के, बहला के दिन काट रहे हैं। लेकिन इसमें हमको बहुत घाटा लग रहा है।

'सम्मीलने नयनयोर्न हि किंचिदस्ति।'

राजा भोज संस्कृत के श्रेष्ठ विद्वान थे। एक बार उन्होंने एक कविता लिखी-

चेतोहरा युवतयः सुहृदोऽनुकूलाः,
सद्बांधवाः प्रणतिगर्भगिरश्च भृत्याः।
वल्गन्ति दन्तिनिवहास्तरलास्तुरंगाः,

मेरे अंतःपुर में चित्तहारिणी-सुन्दर, आकर्षक युवतियाँ हैं। मेरे सभी सुहृद-मित्रवृन्द स्नेहीजन मेरे अनुकूल हैं। मेरे बन्धु-बांधव मेरे हितेच्छु हैं, सबका मेरे प्रति आदर है। मेरे भृत्य-परिजन, सेवक, परिचारक सब मेरे प्रति सर्वथा समर्पित हैं। मेरी गजशाला में प्रबल, मदोन्मत्त हाथी चिंघाड़ते हैं और अश्वशाला में चंचल, स्फूर्त घोड़े हिनहिनाते हैं।

राजा पर वैभव का मद सवार था। कविता के तीन चरण ही बन पाये। चौथा चरण बन नहीं पा रहा था, जिसे एक ब्राह्मण ने पूरा किया-

'सम्मीलने नयनयोर्न हि किंचिदस्ति।'

आंखें मुंद जाने पर कुछ भी नहीं रहता। मरने पर इनमें से कुछ भी साथ नहीं जाता। कितना कटु सत्य है। ऐसा कुछ भी नहीं, जो मरने के बाद साथ जा सके।

सोचो, आपने जीवन में क्या कमाया ? ऐसा क्या पाया या एकत्र किया जो मरने के बाद साथ जा सके। ○○

ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या

- श्री खेमचंद्र चतुर्वेदी

भारतीय अध्यात्म जगत् में जगद्गुरु शंकराचार्य का कथन **'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या'** अत्यधिक लोकप्रिय है। इसका परंपरागत अर्थ यह है कि ब्रह्म सत्य है और दृश्य जगत् मिथ्या है। जगत् का न तो कोई अस्तित्व है और न ही उसका कोई महत्व है। एक जन्मजात संन्यासी के मुख से इस प्रकार का कथन आश्चर्यजनक तो नहीं लगता, किन्तु **शंकराचार्य जी के जीवन-चरित और उनके द्वारा लोककल्याण के लिए किये गये कार्यों को देखकर तो ऐसा प्रतीत होता है कि संभवतः हमने उनके उक्त कथन को समझने में कहीं कोई भूल तो नहीं की है? अद्वैतदर्शन के लिए दिग्विजयी प्रणेता को पलायनवाद का सूत्रधार मानना न्याय संगत प्रतीत नहीं होता।**

मैं शंकराचार्य जी के इस वाक्य पर जितना अधिक ध्यान केन्द्रित करता हूँ, उतना ही मेरा विश्वास दृढ़ होता जाता है कि निश्चित ही हमने इस वाक्य को समझने में भूल की है। वेद और उपनिषदों के मर्मज्ञ प्रखर विद्वान पलायनवादी कैसे हो सकते हैं। उनका तो यह निष्कर्ष है कि **'ईशावास्यम् इदं सर्वम्'। इस संसार के कण-कण में ईश्वर व्याप्त है। जब ईश्वर इस जगत् के कण-कण में बसा हुआ है तो वह मिथ्या कैसे हो सकता है।** संभवतः श्रमण संस्कृति के नकारात्मक प्रभाव से ग्रसित कुछ तत्कालीन भारतीय मनीषियों ने उक्त वाक्य की अपने ज्ञान और अनुभव के आधार पर व्याख्याएं की होंगी। इसी के परिणामस्वरूप भारतीय समाज में आठवीं से बारहवीं शताब्दी तक पलायनवादी संन्यास की प्रवृत्ति स्वच्छंद रूप से फलती-फूलती रही।सोलहवीं शताब्दी में संत तुलसीदास जी ने भी इस पर कटाक्ष किया है -

नारि मुई गृह संपति नासी। मूड़ मुड़ाइ होहिं संन्यासी।।

इस आत्मघाती मिथ्या संन्यास की प्रवृत्ति एक मुख्य कारण थी जिसके कारण इस महान् देश को सदियों तक दासता स्वीकार करनी पड़ी। गीता में इसी क्लीवता (नपुंसकता) को ध्यान में रखकर भगवान् श्रीकृष्ण को अर्जुन से कहना पड़ा - **'क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ !'** अर्जुन तू इस क्लीवता का त्याग कर। यह फटकार केवल अर्जुन को ही नहीं अपितु पूर्ण भारतीय समाज को लगाई गई थी।

इस भ्रान्त धारणा के लिए शंकराचार्य जी को दोषी ठहराना उचित नहीं है। मुझे तो उनका यह कथन कि 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' बड़ा ही सकारात्मक तथा

प्रेरणास्पद प्रतीत होता है। इस वाक्य में प्रयुक्त शब्दों के विश्लेषण से यह बात स्वतः स्पष्ट हो जाती है। 'बृह' धातु से निष्पन्न ब्रह्म शब्द का अर्थ है एक रहस्यमय अव्यक्त शक्ति जो व्यक्त होकर फैलती ही जा रही है। इस अव्यक्त शक्ति के उद्गम स्थान का कोई अता-पता नहीं है। इसके विस्तार का कोई ओर-छोर नहीं है। इसलिए **ब्रह्म को अनिर्वचनीय, अनादि, अनन्त, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान् और सर्वज्ञ आदि विशेषणों से विभूषित किया जाता है। इसे ही हम ईश्वर के नाम से पुकारते हैं क्योंकि यह दृश्य जगत् उसी का ऐश्वर्य है।** इसी परम सत्य को दार्शनिक निरपेक्ष सत्य (**Absolute truth**) कहते हैं, किन्तु इस निरपेक्ष सत्य से उद्भूत ये जो दृश्य जगत् के सत्य हैं, वे शाश्वत नहीं हैं। उनमें प्रतिक्षण परिवर्तन होता है, वे क्षणिक हैं क्योंकि वे परिस्थिति सापेक्ष हैं। इसीलिए इस दृश्य जगत् के नियमों या सत्यों को सापेक्ष सत्य (**Relative truth**) कहा जाता है। शंकराचार्य अपने युग के सर्वश्रेष्ठ दार्शनिक थे और मैं तो यहाँ तक कहना चाहूँगा कि वे भारत के अंतिम बड़े दार्शनिक थे क्योंकि उनके बाद आज तक इस भूखण्ड पर इतने बड़े दार्शनिक ने जन्म नहीं लिया। **शंकराचार्य निरपेक्ष सत्य में जीने वाले संन्यासी थे। उन्हें इस दृश्य जगत् के सत्य महत्वहीन और क्षणिक दिखाई दिये हों तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है किन्तु उन्होंने अपने जीवन में क्षणिकवाद और दुःखवाद का कभी प्रचार नहीं किया। अतः उन्हें पलायनवादी समझना हमारी ही अल्पज्ञता है।**

'ब्रह्म सत्यं' के बाद दूसरा वाक्यांश है-'जगन्मिथ्या' अर्थात् यह जगत् मिथ्या है। **पहले हम जगत् शब्द पर ध्यान दें और मिथ्या शब्द के अर्थ को भली प्रकार समझने का प्रयास करें।**

जगत् शब्द गतिशीलता के अर्थ में प्रयुक्त होता है क्योंकि जगत् 'गमने' अर्थात् 'गम्' धातु से निष्पन्न है, जो प्रकट करता है कि **यह दृश्य जगत् गमनशील है। यह क्षण-क्षण में परिवर्तित होता है। इस नाम, रूपात्मक जगत् में स्थिरता या स्थायित्व नाम की कोई चीज नहीं है।** गीता में इस यथार्थ सत्य को इन शब्दों में व्यक्त किया गया है (15-3)-

न रूपमस्येह तथोपलभ्यते नान्तो न चादिर्न च संप्रतिष्ठा।

इस संसार वृक्ष का स्वरूप जैसा कहा गया है वैसा यहाँ विचार करने पर प्राप्त नहीं होता। इसका न तो कोई आदि है और न अन्त, न ही इसकी स्थिति है अर्थात् यह सतत् परिवर्तनशील है।

भारतीय मनीषा ने इस जगत् की गमनशीलता पर अत्यधिक जोर दिया है और वह भी इसलिए कि **जो वस्तु आपकी स्थायी सम्पत्ति नहीं बन सकती, उसमें अत्यधिक आसक्ति रखना कहाँ की बुद्धिमानी है। यह प्रकृति और उससे उत्पन्न समस्त पदार्थ केवल सदुपयोग के लिए हैं। इनका दुरुपयोग भी घातक है और अति संग्रह भी भयंकर परिणाम उत्पन्न करने वाला है।** यह भारतीय प्रयोजनवाद (Pragmatism) का सर्वोत्तम उदाहरण है। इस तथ्य के प्रकाश में आप शंकराचार्य को पलायनवादी कहना पसन्द करेंगे या यथार्थ प्रयोजनवादी?

अब जरा मिथ्या शब्द पर विचार कीजिए। मिथ्या शब्द के अनेक अर्थ हैं जिनमें झूठा, निरर्थक, कृत्रिम, महत्वहीन आदि अर्थ महत्वपूर्ण हैं। मुझे लगता है कि जगद्‌गुरु शंकराचार्य ने इस शब्द का प्रयोग महत्वहीन के अर्थ में किया है किन्तु इस अर्थ में भी आपत्ति है। **जिस संसार में हम जीते हैं और जिससे हमारा भरण-पोषण होता है, वह महत्वहीन कैसे है।** इस आपत्ति का निराकरण तभी संभव है जब हम शंकराचार्य-सी उच्चावस्था में पहुँच जायँ अर्थात् हम इस जगत् के सापेक्ष सत्यों का मोह त्याग कर निरपेक्ष सत्य से एकाकार हो जायें। परिस्थिति सापेक्ष क्षणिक सत्यों में जीने वाला प्राणी उस उच्चावस्था की कल्पना भी नहीं कर सकता।

हमारी कठिनाई यह है कि **हमारे जीवन के सारे क्रियाकलापों का संचालन इन सापेक्ष सत्यों के आधार पर चलता है।** भौतिक जगत् और उसके नियमों का अपना महत्व है, किन्तु **मानव जीवन की त्रासदी या विडम्बना यह है कि उसने न जाने क्यों एक मिथ्या धारणा बना ली है कि हमारे भौतिक जीवन और आध्यात्मिक जीवन की धाराएँ विपरीत दिशाओं में प्रवाहित हो रही हैं। वह इन दोनों जीवनों का आनन्द एक साथ नहीं ले सकता। हमारी मूल संस्कृति ने इस मिथ्या धारणा के निवारणार्थ एक बहुत ही सकारात्मक दृष्टि हमें दी थी, किन्तु काल के प्रवाह से हम उसे भूल चुके हैं।** हमारे वेदों ने हमें अनेक संदर्भों में यह शिक्षा दी कि यह जीवन ईश्वर का वरदान है। यह भौतिक जगत् उसी कारुणिक शक्ति की सृजन क्रीड़ा है जो अपने अनन्त रूपों में प्रकृति के माध्यम से अभिव्यक्त हो रही है। हमें **ईशावास्य उपनिषद्** की यह शिक्षा सदैव याद रखनी चाहिए कि यह **भौतिक जगत् और आत्म तत्त्व एक दूसरे के विरोधी नहीं अपितु पूरक हैं।** उक्त उपनिषद् के अनुसार जो केवल भौतिक जगत् की उपासना करते हैं वे अन्धकार में पड़ते हैं और जो केवल आत्मा की उपासना करते हैं, वे उससे भी अधिक घोर अंधकार में जा गिरते हैं। **जो भौतिक जगत् और**

आत्मजगत् दोनों को एक दूसरे का पूरक मानते हैं, वे ही सच्चे वेदवित् हैं। इसी उपनिषद् में यह भी कहा गया है कि :–

अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते।

अविद्या से हम मृत्यु के प्रवाह को तर सकते हैं और विद्या द्वारा अमृत को चख सकते हैं। स्मरण रखने की बात है कि **अविद्या भौतिक जगत् के ज्ञान को बताया गया है जिसे हम सापेक्ष सत्य (Relative truth) कह सकते हैं, और विद्या का अर्थ आत्मतत्त्व के ज्ञान से है।** पता नहीं कैसे और क्यों हम अपनी स्वस्थ, संतुलित और सकारात्मक संस्कृति को विस्मृत करते चले गये और हमारा जीवन एकांगी या अतिवादी बन गया।

यह स्वीकार्य है कि **अध्यात्म भारतीय संस्कृति का प्राण है किन्तु हमें एकांगी या अतिवादी होने से तो बचना ही है और बचना हमें इस मिथ्याचार से भी है कि हम बात तो करें निरपेक्ष सत्य की और भौतिक सुखों में आकण्ठ डूबे रहें।** ये सारे भौतिक पदार्थ हमारी भौतिक आवश्यकताओं के लिए ही हैं किन्तु इनमें आसक्ति क्यों? न तो इनका अनावश्यक संग्रह हितकर है और न सर्वथा त्याग। हम उन त्यागी साधु–संन्यासियों को केवल अपना आदर्श मानें जिनका उच्चस्तरीय ज्ञान भौतिक जगत् के आकर्षणों का त्याग कर चुका है। हमें केवल दिखावे के लिए न तो उनके जैसी वेशभूषा धारण करनी है और न किसी काल्पनिक धारणा का अन्धानुकरण करना है। **हम जहाँ हैं वहीं से शनैः–शनैः आत्मजगत् की ओर अग्रसर हों। पहले इस स्थूल जगत् में, जो ईश्वर की ही अभिव्यक्ति है, इस आत्म–तत्त्व की खोज करें, जो सर्वत्र व्याप्त है।** गीता के इस उपदेश पर आस्था रखें कि (6–30) –

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति ।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति।।

जो मुझे सब जगह देखता है और जो मेरे अन्दर सबको देखता है, उसके तो मैं प्रत्यक्ष ही रहता हूँ और ऐसा भक्त भी मेरे समक्ष ही रहता है। हमारे जैसे सांसारिक लोगों के लिए इससे सुगम मार्ग और कोई नहीं है, किन्तु इसके लिए भी हमें सतत् जागरूक रहने की आवश्यकता है। **सर्वोच्च ईश्वरीय अनुभूति बड़े धैर्य, विवेक और अभ्यास के बिना संभव नहीं है। इस अभ्यास से धीरे–धीरे हमारा अहं स्वतः विगलित होता चला जायेगा और हमारी स्वार्थबुद्धि लोकसंग्रह हेतु कर्त्तव्य कर्म करने के लिए प्रेरित होगी।**

जब हमारा प्रत्येक कर्म ईश्वर समर्पित होगा तब कहीं हमें उस उच्चावस्था की ओर अग्रसर होने का अवसर मिलेगा, जिस उच्चावस्था में जगद्गुरु शंकराचार्य जी रहे थे और संभवतः तभी हम भारत के उस अद्वितीय महान् दार्शनिक के इस कथन का मर्म समझ पायेंगे कि–'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या।'

अपने दोष

- श्री देवीदत्त शर्मा

एक बार दादा वासवानी ने अपने गुरु साधु वासवानी से 'परदोष के बारे में चर्चा की, क्या इससे कोई सुधार संभव है? क्या इससे दोषी को कोई मदद पहुंचाई जा सकती है?' **गुरु ने समझाया कि दूसरों के दोष देखने से बड़ा और कोई पाप नहीं है। जब व्यक्ति दूसरों के दोषों का फैसला करने लगता है तो वह स्वयं पाप में डूब जाता है। वह स्वयं बुरा बन जाता है।**

यदि व्यक्ति अपने सपनों का विश्लेषण करे और जाग्रत अवस्था में उठने वाली इच्छाओं के बारे में मनन करे तो पायेगा कि उसके अंदर स्वयं कितने दोष व पाप छिपे पड़े हैं। परमात्मा से यह बात छिपी नहीं है। **दूसरों के दोष सुधारने की अपेक्षा सही यही है कि खुद दोषों से बचे। दूसरों से सहानुभूति व प्रेम रखे और स्वयं दोषों से बचे।**

साधु वासवानी ने कहा–**जो तुम्हारे भाई का पाप है, वह तुम को शिक्षा देता है कि तुम अपने अन्दर झांको, तब मालूम होगा कि तुम्हारे अन्दर भी वही पाप है।**

जब तुम उस पाप को हटाने का प्रयत्न करोगे, तब तुम जानोगे कि जड़ कितनी गहरी है और कितना कठिन है उससे लड़ना। पाप करने वाले भाई की मदद करने का उत्तम तरीका है, आप उस पर सहानुभूति रखें यानी प्रेम देवें।

साधु वासवानी ने कहा, **जब तुम सुबह ध्यान में बैठो तथा शाम की प्रार्थना करो, तब सबके प्रति सद्भाव रखते हुए तुम्हारे प्रेम के विचार प्रसारित करो, उन सब के लिए जो पाप के अन्धेरे में गिरे हैं। पापी भी एक बीमार है, वो भी प्यार चाहता है और कुछ नहीं।**

39, अशोक मार्ग, आनासागर लिंक रोड़, अजमेर– 305001

ज्ञानमार्ग

- श्री गंगाप्रसाद मिश्र

ज्ञानमार्ग क्या है? सबमें समता का भाव रखना। **'समत्वं योग उच्यते।'** ईश्वर के लिए पापी और पुण्यात्मा, सज्जन और दुर्जन सभी समान हैं (5-15)-

नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः।

प्रकृति का व्यवहार सभी के साथ एक सरीखा है। प्राकृतिक विपदायें सभी को समान रूप से प्रभावित करती हैं। भूकम्प या बाढ़ का प्रभाव पुण्यात्मा या पापी दोनों पर एक सा ही होता है। उसी प्रकार ज्ञानी मनुष्य सुख-दुख, सफलता-असफलता, सिद्धि और असिद्धि में सम रहकर कर्म करता है (2-48)-

'सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा'

ज्ञान-प्राप्ति के लिए मनुष्य का श्रद्धावान् तथा संयमी होना अनिवार्य है (4-39)-

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।

ज्ञान प्राप्ति के मार्ग में मन का चंचल होना सबसे बड़ी बाधा है। जब अर्जुन ने भगवान् से कहा (6-34) कि मन को वश में करना बड़ा दुष्कर है तो भगवान् ने यही कहा कि (6-35)-

अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।।

नित्य प्रति के अभ्यास व वैराग्य द्वारा मन और इन्द्रियों को वश में किया जा सकता है। ज्ञान प्राप्ति के लिए मन को वश में करना अपरिहार्य है (6-36)-

असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः।

मन और इन्द्रियों को वश में करके ज्ञान-मार्ग पर चलकर मनुष्य परमात्मस्वरूप हो जाता है और परम शांति को प्राप्त होता है (4-39)-

ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति।।

ऐसे ज्ञानी के लिए पूजा, अर्चना, जप-तप, यज्ञ-हवन, तीर्थाटन आदि करने की आवश्यकता भी नहीं रह जाती है। वह स्वयं ईश्वरस्वरूप हो जाता है।

ज्ञानी शरीर को काम में तो लेते हैं पर उससे अनासक्त रहते हैं। **जैसे कलम से लिखने के बाद वह छोड़ दी जाती है, ज्ञानी का व्यवहार शरीर के प्रति उसी**

प्रकार का होता है। उनके कर्म, क्रिया बन जाते हैं। वे योगारूढ़ कहे जाते हैं। कबीर ने कहा है–

दास कबीर जतन तें ओढ़ी,
ज्यूं की त्यूं धर दीनी चदरिया।

कबीर उस स्थिति में थे जहाँ वे स्वयं ही अपनी आत्मा से मार्गदर्शन लेते थे। गीता में भी कहा है कि मनुष्य अपना उद्धार स्वयं करे क्योंकि वह स्वयं ही अपना मित्र है और स्वयं ही अपना शत्रु भी (6-5)–

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः।।

ज्ञानमार्ग पर चलने वाला सारी क्रियाओं को प्रकृति द्वारा होती हुई जानकर अपने को उनसे सर्वथा अलग और निर्लिप्त अनुभव करता हुआ कर्म बंधन से मुक्त रहता है। यह मार्ग बड़ा कठिन है क्योंकि मन को वश में करना इतना सरल नहीं है। इसीलिए ज्ञानमार्ग पर चलने वाला कोई बिरला ही होता है किन्तु वह स्वयं ही अपना उद्धार कर लेता है।

निश्चिंत जीवन का रहस्य

सुकरात की भेंट एक बार एक वृद्ध व्यक्ति से हुई, जो सदैव निश्चिन्त रहते थे। सुकरात ने इसका रहस्य जानना चाहा। तब वे मुस्कुराकर बोले–"मैं अपने पारिवारिक उत्तरदायित्व अपने समर्थ पुत्रों को देकर सर्वथा निश्चिंत हूँ। वे जो कहते हैं, कर देता हूँ, जो खिलाते हैं खा लेता हूँ और अपने पौत्र-पौत्रियों के साथ हंसता खेलता रहता हूँ। बच्चे कोई भूल करते हैं, तब भी मैं चुप रहता हूँ। मैं उनके किसी कार्य में बाधक नहीं बनता, पर जब कभी वे परामर्श लेने आते हैं तो मैं अपने जीवन के सारे अनुभवों को सामने रख, की गई भूल से उत्पन्न दुष्परिणामों की ओर से सचेत कर देता हूँ। वे मेरी सलाह पर कितना चलते हैं, यह देखना और अपना मस्तिष्क खराब करना मेरा काम नहीं है। वे मेरे निर्देशों पर चलें ही, यह मेरा आग्रह नहीं रहता। परामर्श देने के बाद भी यदि वे भूल करते हैं तो मैं चिंतित नहीं होता, उस पर भी यदि वे पुनः मेरे पास आते हैं तो मेरा दरवाजा सदैव उनके लिए खुला रहता है। मैं पुनः उचित सलाह देने का प्रयास करता हूँ।" वृद्धावस्था में कैसे जिया जाए इसका यही रहस्य है। ○○

एक भक्त का अंकुरण

- पूज्य स्वामी श्री सुबोधानंदजी

भागवत में ध्रुव जी की कथा में पूजा की विधि बतलायी गयी है। हमें उसके अनुसार घर में नियमित रूप से पूजा करनी चाहिए। इसका जीवन पर बड़ा सुन्दर प्रभाव पड़ता है। सबसे बड़ा प्रभाव तो यह पड़ता है कि आपके भीतर अनजाने ही एक भक्त का निर्माण होने लगता है। अब प्रश्न उठता है, द्रव्य क्या हो ? पहला तो पत्रम्। पत्रम् में सालिग्रामजी, कृष्ण, राम तथा भगवान् विष्णु को तुलसी पत्र चढ़ाने का विधान है। पत्रम् का अर्थ यह नहीं है कि कोई भी पत्र चढ़ा दिया जाय। यह तो प्रमाद है। इसी प्रकार भगवान् शिव का पूजन हो तो बिल्वपत्र चढ़ाया जाता है। दूसरा–पुष्पम्। हमें ध्यान रखना चाहिये कि भगवान् के किस रूप को कौन सा पुष्प प्रिय है। फिर फलं, तोयम्। भगवान् शिव को जल से अभिषेक बहुत प्रिय है।

भगवान् ने 'द्रव्य' के लिये विशेष आग्रह नहीं किया हो, ऐसी बात नहीं है। शास्त्र का कथन है– 'विभवानुसारेण अप्रदानं शाठ्यम्।' अर्थात् जिसे आप कुछ भेंट कर रहे हैं, उसके स्वयं के वैभव के अनुसार भेंट नहीं करना शठता है। भेंट भगवान् के वैभव के अनुसार ही होनी चाहिये। आप किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति को आमंत्रित करते हैं और यदि आपने उनकी गरिमा के अनुरूप सम्मान नहीं किया तो यह आपकी श्रद्धा की न्यूनता मानी जायेगी।

मानस में प्रसंग आता है कि भरद्वाज ऋषि ने भरतजी को उनकी सेना सहित आमंत्रित तो कर दिया लेकिन उन्हें चिन्ता हुई कि इनका आतिथ्य सत्कार किस प्रकार किया जाय।

मुनिहि सोच पाहुन बड़ नेवता।
तसि पूजा चाहिअ जस देवता।।

कथा आती है कि ऋद्धि–सिद्धि और नवनिधियों ने मुनि के सम्मान की रक्षा की तथा दो दिन तक आश्रम में ही स्वर्ग जैसी व्यवस्था कर दी। कहने का अभिप्राय यह है कि अपने स्तर के अनुसार ही नहीं वरन् उससे भी बढ़कर भेंट पूजा की जानी चाहिये, अन्यथा अपराध हो जाता है।

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।

घर में जब प्रभु विराज गये तो जब भी घर से बाहर जाना हो तो प्रभु से पूछ कर जाओ। लौटकर आओ तो हाजिरी दो। तब आपको दिन भर में की गई गलतियों का स्मरण होने लगेगा। **घर में प्रभु को विराजमान करने से पूरे घर का वातावरण बदल जाता है। घर में अब खाना नहीं, प्रसाद बनने लगता है।** 'प्रभु प्रसाद पट भूषन धरहीं।' अर्थात् जो भी वस्त्र या आभूषण पहनो, प्रभु को भेंट करके पहनो। बच्चों की भी आदत डालो कि **घर से बाहर जाते समय प्रणाम करके जायें तथा वापस आवें तब भी प्रणाम करें। तब घर सही अर्थों में घर बन जाता है।**

हमारा देश नौ सौ वर्षों तक विधर्मियों के शासन में रहा। हमारे सार्वजनिक मन्दिर विधर्मियों द्वारा तोड़े गये। लेकिन घरों के मन्दिर सुरक्षित रहे। इसीलिये कुल धर्म बना रहा, परिवार बने रहे। **विश्व के इतिहास में भारत एक मात्र देश है जहां नौ सौ वर्षों तक विधर्मियों का शासन रहने के बावजूद आज भी हम भगवद्गीता पढ़ते हैं।** असल में हिन्दुओं को एक Soft community माना जाता है। मुझे ज्ञात हुआ कि **किसी समय में स्पेन एक मुस्लिम देश था। लेकिन ईसाइयों के आक्रमण के दो तीन वर्षों में ही वहां सब ईसाई बन गये। अब तो वहां मुश्किल से एक दो मस्जिदें बताई जाती हैं।** हमारे धर्म को लोग Soft मानते हैं। लेकिन **हमें ध्यान रखना चाहिये कि कुलधर्म की रक्षा करना अनिवार्य है। इस हेतु सत्संग में जाना चाहिये, जहां हमारी मान्यतायें दृढ़ होती हैं। प्रेरणा मिलती है। भक्ति बढ़ती है।** यह अच्छी बात है। लेकिन अपनी दैनिक पूजा आराधना के लिये घर में ही आवश्यक व्यवस्था होनी चाहिये।

कुछ भक्त लोग कहते हैं, यह बाह्य पूजा अनावश्यक है, हम लोग तो मानसिक पूजा करते हैं। पर वे यह नहीं सोचते हैं कि **जब मानसिक भोजन से काम नहीं चल सकता है तो मानसिक पूजा से ही कैसे चलेगा?** कैसी विडम्बना है! **स्वयं को तो सब कुछ ठोस चाहिये और भगवान् के लिये केवल मानसिक।** यह सब बहानेबाजी है। ऐसे लोग अपने आपको ही ठग रहे हैं। **You are cheating yourself in the name of intellectualism.** यह निरी मूर्खता है।

जैसे आप घर में अपने लिये, अपने परिवार के लिये जगह की समुचित व्यवस्था करते हैं, उसी प्रकार **घर में प्रभु के लिये भी उचित स्थान होना चाहिए। इससे सत्संग सफल हो जायेगा।** प्रभु के प्रति श्रद्धा का भाव बढ़ेगा। निष्ठा बढ़ेगी। जिन्होंने अभी

तक इस बारे में शुरुआत नहीं की है, उन्हें अब विधिपूर्वक शुरू कर देना चाहिये। **साधु का काम तो केवल इतना ही है कि लोगों को प्रभु से जोड़ दे। प्रपंच का विस्तार करना साधु का काम नहीं है। नारदजी ने भक्ति माता के सामने प्रण किया था–**

कलिना सदृशो लोके युगो नास्ति वरानने।
तस्मिन् त्वां स्थापयिष्यामि गेहे गेहे जने जने।।

तो साधु का केवल इतना ही काम है कि लोग भगवान् की ओर उन्मुख हो जायें। प्रभु से जुड़ जायें। **जीवन की राह बदल देने से बड़ा कोई उपकार नहीं हो सकता है। भागवत में कहा है–**

'भुवि गृणन्ति ये भूरिदा जनाः'

धरती पर जो प्रभु का गुणगान करते हैं, उनसे बड़ा कोई दानी नहीं होता है, क्योंकि वे तो असल में प्रभु के गुणों का दान कर देते हैं। जिनको यह दान मिल जाता है, चाहे कुछ जन्मों के बाद ही सही, वे ऐसे दानियों को याद करते हैं। नारदजी तो दासीपुत्र थे। लेकिन सत्संग से उनका जीवन मुड़ गया और वे देवर्षि नारद बन गये। अतः घरों में पूजा अवश्य की जानी चाहिये। होना तो यह चाहिये कि हम घर प्रभु के **निमित्त बनावें और हम स्वयं उसमें प्रभु के सेवक बन कर, किंकर बन कर रहें। और ध्यान रखें कि अपने हृदय में एक बार भक्तिभाव जग जाए तो उसे पूरे दिन सम्हाल कर रखें।** उस भाव पर आपका मनुष्य, व्यापारी या अफसर होने का भाव हावी न होने पाये। शुरू–शुरू में यह कठिन लगेगा। हमारी पुरानी आदत होने से हमारा सांसारिक भाव हावी होगा। लेकिन संभालते–संभालते संभल भी जायेगा। यह मेरा वादा है।

भक्त बन कर आप श्वास भी लेंगे तो यह श्वास लेना भी भक्ति ही होगी। भगवान् ने अध्याय 9, 26 वें श्लोक में भक्त का प्रस्फुटन बताया है अर्थात् भक्त का अंकुरण। 27 वें श्लोक में पूजा का परिपाक है। **जब हमारा प्रत्येक कार्य प्रभु को अर्पित हो जायेगा तो यह भक्ति का परिपाक होगा।**

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्।।

प्रसन्न मन होने पर कोई समस्या नहीं रहती। समस्या का अवतरण उदास मन में होता है। उदास भाव ही सबसे बड़ी समस्या है। – श्री श्री रविशंकर महाराज

संचित शक्ति के पुण्यों से

- श्री दीपचंद सुथार

चलते-चलते
मनुष्य बुरी तरह से थक जाता है
तब हार कर
पथ के छायादार वृक्ष के नीचे बैठ-
विश्राम से अर्जित
ऊर्जा के सहारे से
हिम्मत-
फिर, आगे बढ़ने की करता है
मृत्यु भी ऐसा ही
एक रम्य स्थल है
जन्म से जुड़ी जिज्ञासाओं को
तृप्त करने के संदर्भ में
पग-पग की परेशानियों से
समझौता कर
जीवन पर्यन्त इतस्ततः भागता रहता है
अन्ततः अधूरी छोड़
गीता के शाश्वत ज्ञान की पुष्टि करता, कि-
जीवात्मा वस्त्र की तरह
पुरानी देह छोड़
कर्मानुसार-
नया जीवन लेता है
जन्म का चक्र इसी तरह चलता रहता है
जिस किसी ने
दफना इच्छाओं को दिया
संचित शक्ति के पुण्यों से
तोड़-
आवागमन के चक्र को दिया।

OO

आत्मेश्वर स्वरूप सत्याधार है

-पूज्य संत कृष्ण आनंदजी

नहिं देह तू, नहिं देही जीव तू,
देह एवं देही से सर्वदा भिन्न है।
कर्त्ता नहीं भोक्ता नहीं,
करने एवं भोगने से सर्वदा मुक्त है।।
स्व-स्वरूपमय सर्वज्ञ है,
नित्य आनंद स्वरूप निष्काम है।

अपने में आप है, सर्व रचना से निस्संग है,
सर्व में सत्य स्वरूप है, यही तेरा सत्संग है।।
निःशोक है, निर्मोह है, सर्व आत्मस्वरूप है,
तुझमें नहीं कभी भी भय, तू अभय स्वरूप है।
अनात्म संग से, रागादि मन के दोष हैं,
तू अनात्म रूप, मन, बुद्धि, अहम् नहीं है।।

बोधात्म तेरा स्वरूप है सर्वदा,
अज्ञान, तीनों काल में तुझ में नहीं है।

तू सर्वदा निर्दोष स्वरूप है, प्रकृति है दोष-मय सारी,
स्वरूपमय सर्वकाल तू स्वयं में परिपूर्ण है।।
तेरे मेरे में जो परम सत्य है,सर्वदा जीवनमय है,
इस अमर स्वरूप परमात्मा के सिवा कुछ सत्य नहीं है।

अहंता ममता से सर्वदा रहित तू,
सर्व में रमा हुआ सर्व का सत्याधार है तू।। OO

ऐसे लोगों की सलाह अवश्य लेवें जो आपसे पूर्व आप वाले लक्ष्य को प्राप्त कर चुके हैं। इससे बहुत सी परेशानियों से बचा जा सकता है। OO

श्रद्धा द्वारा तत्त्वज्ञान की प्राप्ति

-श्री गंगानारायण माथुर 'अद्वैत'

हमें अविद्या (सांसारिक ज्ञान) को त्यागकर, नित्य निरन्तर विद्या (तत्त्वज्ञान) की प्राप्ति के पथ पर अग्रसर होना चाहिये। यथार्थ ज्ञानार्जन के लिये तीन गुण आवश्यक हैं। (1) श्रद्धा, (2) संयम, तथा (3) समर्पण। इन तीनों गुणों में भी श्रद्धा सर्वोपरि है। श्रद्धा का महत्व बतलाते हुये भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता के श्लोक (4/39) में कहा है-

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति।।

श्रद्धालु मनुष्य को ही ज्ञान प्राप्त होता है, जिसके मन पर संयम का अंकुश लगा हो। उसे परम शान्ति प्राप्त होने से उसका जीवन उत्कृष्ट होता है। ऐसे ही श्रद्धावान तत्त्वज्ञानी सत्पुरुषों को भगवान् बुद्धियोग प्रदान कर उन्हें अपने, परम ब्रह्मस्वरूप की प्राप्ति करवा देते हैं। आगे भगवान् ने बुद्धियोग की श्रेष्ठता पर प्रकाश डालते हुए कहा है (10-10)-

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते।।

निरंतर मेरे ध्यान में लगे तत्त्वज्ञानी पुरुष, जो भक्तिपूर्वक भक्ति में लगे रहते हैं, अर्थात् भजन, पूजन द्वारा मेरा ध्यान करने वालों को मैं (भगवान्) बुद्धियोग प्रदान करता हूँ, जिससे उन्हें मेरी प्राप्ति सहज हो जाती है। अतएव **सर्वोत्कृष्ट विद्या (तत्त्वज्ञान) की उपलब्धि हेतु मनुष्य को स्वाध्याय रूप ज्ञानयज्ञ को करते रहना चाहिये (4-28) -**

स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः ।।

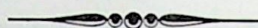
अर्थात् कितने ही कठोर व्रतों से युक्त यत्नशील पुरुष स्वाध्याय (ज्ञानयज्ञ) करते हैं तथा मैं ज्ञानयज्ञ द्वारा पूजित होता हूँ, ऐसा मेरा मत है (18-70) -

ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिष्टः स्यामिति मे मतिः ।।

गीता के चतुर्थ अध्याय में भगवान् कहते हैं कि **ज्ञानी मोह को प्राप्त नहीं होता। जैसे प्रज्वलित अग्नि ईंधनों को भस्म कर देता है, वैसे ही ज्ञानरूप अग्नि**

सम्पूर्ण कर्मों को भस्म कर देता है। इस संसार में ज्ञान के समान पवित्र करने वाला निःसंदेह कुछ भी नहीं है। (4-37)

अर्थात् जो मनुष्य जीवन में विद्या (ज्ञानयज्ञ) की उपादेयता के माध्यम से भी श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण-अर्जुन संवादों पर श्रद्धायुक्त होकर मनन, चिन्तन करता है, वह श्रेष्ठ लोक में ही रहता है। उसे अज्ञानता से मुक्ति मिलती है।



श्री हनुमानप्रसादजी पोद्दार

निष्काम संत संसारी प्रलोभनों में नहीं अटकते। श्री हनुमानप्रसादजी पोद्दार ने जीवन में इसका आदर्श प्रस्तुत किया। उन्होंने तत्कालीन गोरखपुर के कलेक्टर द्वारा प्रस्तावित रायसाहबी की पदवी से बड़ी विनम्रतापूर्वक पीछा छुड़ाया। कमिश्नर होवर्ट द्वारा प्रस्तावित रायबहादुरी तथा गवर्नर सर हेरीहेग द्वारा प्रस्तावित 'सर' की उपाधियों का बहिष्कार किया। अंत में देश की आजादी के बाद श्री गोविन्दवल्लभ पंत (भारत के गृहमंत्री) द्वारा प्रस्तावित 'भारतरत्न' की उपाधि भी अस्वीकार कर दी।

धन और पद के पीछे भागने वालों के इस युग में वे सदैव भगवत्कृपा का अनुभव करते हुए यही कहते थे "भगवान् ने ही उपाधि की व्याधि से सदा मेरी रक्षा की। शरीर तो व्याधियों का घर है ही, फिर नयी 'उपाधि' लेकर निष्काम भगवत्सेवा में क्यों बाधा डाली जाये।" सच्चे निष्काम संत का यही आदर्श है।

तत्कालीन गृहमंत्री पं. गोविन्द वल्लभ पंत ने उन्हें पत्र लिखा कि आप इतने महान् हैं, इतने ऊँचे महामानव हैं कि सारी दुनिया को आप पर गर्व होना चाहिए। मैं आपके स्वरूप को, महत्व को न समझकर ही आपको "भारतरत्न" की उपाधि देकर सम्मानित करना चाहता था। आपने इसे स्वीकार नहीं किया, यह बहुत अच्छा किया। आप इस उपाधि से बहुत-बहुत ऊँचे स्तर के हैं। मैं आपको हृदय से नमस्कार करता हूँ। ○○

दर्शन का स्वरूप तथा इसकी उपादेयता

- डॉ. महेशचन्द्र शर्मा

सामान्यत: आँखों के माध्यम से जो ज्ञान हम प्राप्त करते हैं, उसे 'दर्शन' कहते हैं। दर्शन का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। जो दृष्टिगोचर होता है, दर्शन उसे भी देखता है तथा जो स्थूल दृष्टि से परे है, दर्शन उसे भी देखता है। यह कहना सही होगा कि **दर्शन के क्षेत्र में 'दृश्य' एवं 'अदृश्य' – दोनों ही समाहित होते हैं।**

दर्शन में आत्मसाक्षात्कार (या ब्रह्म–साक्षात्कार) का भाव निहित होता है। **जिस शास्त्र में आत्मा, अनात्मा, जीव, ब्रह्म, प्रकृति, पुरुष, जगत्, धर्म, मोक्ष तथा मानव–जीवन के उद्देश्य आदि का निरूपण होता है, उसे 'दर्शन' कहते हैं तथा जो सत्य का दर्शन कर लेता है, विद्वान् उसे ही 'ज्ञानी' कहते है।**

'श्रीमद्भगवद्गीता' भारत की विश्वविख्यात धार्मिक, दार्शनिक एवं सांस्कृतिक रचना है। यह मानव–जीवन को आलोकित करने वाली रचना है। यह रचना सार्वकालिक एवं सार्वभौमिक है। इसे समाज में आज 'गीता' के नाम से जाना जाता है। इस रचना में ऊपर बताए गए तथ्य का प्रतिपादन इस प्रकार किया गया है (4–38)–

''न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।''

कहा जा सकता है कि जीवन एवं जगत् के प्रवाह में ज्ञान के समान हमें पवित्र करने वाला निश्चय ही कुछ भी नहीं है। भारतीय मनीषी की यह मान्यता सही है कि –

''ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः।''

यशस्वी विचारक, शिक्षावेत्ता, भारत के विश्वविख्यात दार्शनिक डॉ. राधाकृष्णन् का मत है कि दर्शन की निम्नस्थ दो भूमिकाएँ होती हैं –

(1) जीवन को व्यवस्थित बनाना तथा

(2) कर्म का मार्ग प्रदर्शित करना।

सर्वपल्ली डॉ. राधाकृष्णन् का ऊपर निर्दिष्ट मत दर्शन एवं जीवन के अपरिहार्य सम्बन्ध को हमारे सामने बखूबी दर्शा रहा है।

जब तक जीवन और जगत् की नाना समस्याएँ हमारे सामने रहेंगी, तब तक उनका समाधान निकालने के लिए हमें 'दर्शन' की ही शरण में जाना पड़ेगा। जब तक दर्शन उन समस्याओं के सत्य का उद्घाटन नहीं कर देता, तब तक हम कर्म–क्षेत्र में प्रवृत्त नहीं हो सकते।

हर व्यक्ति को 'मनुष्य' नहीं कहा जा सकता। **जो व्यक्ति विचारशील होता है तथा अपने दैनिक जीवन में आने वाले प्रश्नों– समस्याओं का समाधान निकाल लेता है, वस्तुत: उसे ही 'मनुष्य' कहा जाता है।** विचारक सुदर्शन की यह मान्यता है कि जिसमें सोचने की शक्ति समाप्त हो गई है, समझ लीजिए, वह व्यक्ति बर्बाद हो चुका है। इस सन्दर्भ में मेरी मान्यता निम्नस्थ है – **केवल जन्म से ही कोई मनुष्य कहलाने का अधिकारी नहीं होता। कर्त्तव्य कर्म करने वाला ही मनुष्य कहलाने का अधिकारी है। जो निरन्तर मननशील है केवल वही मनुष्य कहलाने का अधिकारी है।**

दर्शन का सम्बन्ध बुद्धि के साथ होता है। दर्शन ही हमें चिन्तन–मनन की दिशा में ले जाता है। **दर्शन के आधार पर ही हम यह जान पाते हैं कि बाहरी संसार पर हम किस प्रकार नियन्त्रण करें,** पुनर्निर्माण किस प्रकार करें तथा अपने सामने जीवन–यात्रा में हम क्या 'लक्ष्य' रखकर चलें।

आज वस्तुत: रचनात्मक कार्य करने का युग है। जो इस निर्माण की दृष्टि से हमारा सहयोग करे, हमारा मार्गदर्शन करे, उसे ही हम 'सही ज्ञान' कहेंगे–'सच्चा दर्शन' कहेंगे। इस सन्दर्भ में मेरी मान्यता निम्नस्थ है–

''जो व्यक्ति जीवन में महत्वाकाँक्षी होता है तथा तदर्थ प्रयत्नशील भी रहता है, जो रचनात्मक कार्य में लगा रहता है, जीवन सार्थक उसी का होता है।''

भारत के पूर्व राष्ट्रपति अब्दुल कलाम साहब की यह मान्यता है कि–**''जीवन में सही दिशा समृद्धि और सफलता दिलाती है।''** इस मान्यता को ध्यान में रखकर चलना चाहिए, तभी अभीष्ट सफलता मिलेगी।

आज ज्ञान–विज्ञान का युग है। हर प्रबुद्ध नागरिक किसी भी बात को तर्क–वितर्क की 'तुला' पर तौलता है। **विज्ञान हमें शक्ति दे सकता है– गति प्रदान कर सकता है किन्तु 'जीवन का लक्ष्य दिखाने का कार्य दर्शन ही कर सकता है। यही वस्तुत: भारतीय दर्शन की प्रासंगिकता है।'**

आज के आपाधापी, भाग–दौड़, स्वार्थपरता, वैचारिक संकुचितता–संकीर्णता तथा साँस्कृतिक मूल्यों की गिरावट के युग में यदि हमने, अपने विवेक के आधार पर, जीवन के प्रति अपना एक स्वस्थ दृष्टिकोण निर्मित कर लिया तो सचमुच हमारा जीवन अधिक–से–अधिक समृद्ध–सम्पन्न होता चला जाएगा। **यदि हमारा दृष्टिकोण स्वस्थ होगा, रचनात्मक होगा तो हमारे कार्यकलाप भी स्वस्थ होंगे, रचनात्मक होंगे।** फलस्वरूप हमारा व्यक्तित्व भी 'प्रभावशाली' एवं दूसरों के लिए 'प्रेरक' बन जाएगा।

कहना न होगा कि मानव-जीवन को सुखी-समृद्ध तथा उन्नतिशील बनाने की दृष्टि से 'दर्शन' की भूमिका सर्वथा अपरिहार्य होती है। मानव-जीवन में दर्शन की उपादेयता निर्विवाद है।

...तो गीता पढ़िये !

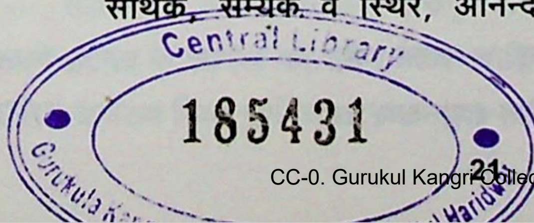
-डॉ. रामकृष्ण सिंगी

जानना है आत्मा-परमात्मा का मर्म,
कर्म क्या है और, कैसे हैं अकर्म-विकर्म?
इस बृहत रचना में हम सब जीवों की सत्ता है क्या ?
आत्मा के वस्त्र-रूप शरीर का गुण-धर्म ?
...........तो गीता पढ़िये !

सीखना है सहजता, स्थितप्रज्ञता, सन्तोष।
विषम स्थिति में धैर्य रखकर मनःस्थिति निर्दोष।
उद्वेगों से रहित जीवन, सब से मैत्री-भाव।
अनवरत जिज्ञासु बनकर सीखने का चाव।।
...........तो गीता पढ़िये !

समझना हो 'सत्व, रज, तम' की प्रकृति, प्रभाव।
पाना हो सुख-दुःख में स्थिरमति बिना तनाव।।
जानना हो अनन्याश्रित भक्ति की महिमा अनूप।
श्रद्धा के, तप, दान, धृति के विविध व्यवहारी स्वरूप।।
...........तो गीता पढ़िये !

चाहिये सन्तुलित जीवन, आत्मतुष्ट व शान्त।
उत्तेजना-विहीन, आस्तिक, सुखप्रद, एकान्त।।
प्रभु के विश्व-स्वरूप में निमग्न आत्मविभोर।
सार्थक, सम्यक व स्थिर, आनन्दमय चहुँ ओर।।
...........तो गीता पढ़िये !



1194, भगतसिंह मार्ग, महू (म.प्र.)

श्रीगीता की उपादेयता

- आचार्य उपेन्द्र पाण्डे

गीता जीने की कुशल कला का,
सद्य: ज्ञान करा देती।
स्वस्थ-समृद्ध-सफल समाज का,
सुदृढ़ सूत्र यह सिखलाती।।

यह धर्मशास्त्र - आचारशास्त्र,
यह नीतिशास्त्र - व्यवहारशास्त्र।
यह योगशास्त्र - सत् शील शास्त्र,
यह सृष्टि-पुष्टि-ओ दृष्टिशास्त्र।।

वर्णित इसमें ज्ञान-विज्ञान सूत्र
महाऽणुसूत्र - परमाणुसूत्र ।
सर्वत्र ख्यात खलु ब्रह्मसूत्र,
आचार्यों के वेदांत सूत्र ।।

इसमें पाते सद्गुरु- दर्शन,
इसमें पाते भगवद् दर्शन ।
शरणागत अर्जुन ने पाया था,
कृष्ण का विश्वरूप दर्शन।।

क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ ज्ञान का,
है इससे बढ़कर शास्त्र नहीं।
जो इसके अनुकूल चला,
जग में है बड़ा गृहस्थ वही ।।

जो अनन्य चिंतन रत रहता,
प्रभु के चरणों का हरदम ।
योगक्षेम वहन करते हैं,
प्रभु भी उसका नित क्षण-क्षण ।।

○○

तत्वज्ञान के लिए ध्यानयोग में निरन्तर दृढ़ स्थिति

- डॉ. मंजुलता गुप्ता

श्री भगवान के ध्यान के समान संसार में कल्याण का और कोई दूसरा साधन नहीं है। इसलिए मनुष्य को भगवान का ध्यान श्रद्धा और प्रेमपूर्वक निष्काम भाव से निरन्तर करना चाहिए। एकान्तवास, सत्-शास्त्रों का मनन, नाम का जप, स्वरूप का स्मरण, तत्त्व और रहस्य का ज्ञान, संसार के भोगों से वैराग्य-ये सब भगवान के स्वरूप व तत्व को समझने के लिए ध्यानयोग में विशेष उपयोगी हैं।

ध्यानयोग से समस्त पापों का नाश होता है। जप और ध्यान ही योग का स्वरूप है। शब्द-ब्रह्म (ॐकार एवं वेद) से प्रकट हुआ द्वादशाक्षर मन्त्र वेद के समान है। ध्यान से मनुष्य सब कुछ पाता है। **ध्यान से वह शुद्धता को प्राप्त होता है।** ध्यान से परब्रह्म का बोध होता है तथा सगुण-स्वरूप में चित्तवृत्ति की एकाग्रतारूप योग भी ध्यान से ही संभव होता है-

ध्यानेन सर्वमाप्नोति ध्यानेनाप्नोति शुद्धताम्।
ध्यानेन हि परं ब्रह्म भूतौ योगस्तु ध्यानजः।।

ध्यान दो प्रकार का होता है। एक सालम्ब (सगुण) का तथा दूसरा निरालम्ब (निर्गुण) का। सगुण साकार विग्रह नारायण का दर्शन सालम्ब ध्यान है। दूसरा जो निरालम्ब ध्यान है, वह ज्ञानयोग के द्वारा बताया गया है। रूपरहित, अप्रमेय तथा सर्वस्वरूप जो सनातन तेज है, जो आकाश के समान सर्वव्यापक है, जिसकी कोई उपमा नहीं है वही परमेश्वर का निराकार स्वरूप ध्यानयोग के द्वारा चिन्तन करने योग्य है। वह शुद्ध स्फटिक के समान निर्मल है। अपने तेज से उपमारहित और अगाध है, उसी को तुम अंगीकार करो। **ध्यान से पवित्र तथा ज्ञान रूपी जल से भरे हुए राग-द्वेषमय मल को दूर करने वाले मानस-तीर्थों में जो मनुष्य स्नान करता है, वह उत्तम गति को प्राप्त होता है।**

ध्यानपूते ज्ञानजले रागद्वेषमलापहे।
यः स्नाति मानसे तीर्थे स याति परमां गतिम्।।

साधक की साकार-निराकार, सगुण-निर्गुण जिस स्वरूप में भी रुचि हो, उसे अपने इष्टदेव के स्वरूप का ध्यान करना चाहिए। उस परमात्मा के निर्गुण-निराकार सहित असंख्य दिव्य गुणों से सम्पन्न सगुण-साकार स्वरूप का ध्यान किया जाए, तो

और भी उत्तम है। ऐसा ध्यान ही परमतत्व के समग्र रूप का ध्यान है। निर्गुण-निराकार ब्रह्म ही भक्तों के प्रेम और भाव के कारण विज्ञानानन्दमय सगुण-साकार रूप में प्रकट होता है।

ध्यान योग का विकास इस प्रकार किया जाए कि तत्व-ज्ञान की प्राप्ति के लिए निरन्तर दृढ़ स्थिति बनी रहे। इस मर्म को समझाते हुए गीता में भगवान् ने कहा है- मन और इन्द्रियों सहित शरीर को वश में रखने वाला, आशारहित और संग्रहरहित योगी अकेला ही एकान्त स्थान में स्थिर होकर आत्मा को निरन्तर परमात्मा में लगावे। शुद्ध भूमि में, जिसके ऊपर क्रमश: मृगछाल और वस्त्र बिछे हों, जो न बहुत ऊँचा हो और न बहुत नीचा, ऐसे आसन पर बैठकर इन्द्रियों की क्रियाओं को वश में रखते हुए मन को एकाग्र करके अन्त:करण की शुद्धि के लिए योग का अभ्यास करे।

जिस योगी पुरुष का मन वश में होकर एकाग्र भाव से परमेश्वर के स्वरूप को जान जाता है, वह परमानन्द, शान्ति को प्राप्त कर लेता है।

प्रशान्तमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम्।
उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम्।।

अर्थात् जिसका मन भली भांति शान्त है, जो पाप से रहित है, जिसका रजोगुण शान्त हो गया है, ऐसे सच्चिदानन्दघन ब्रह्म के साथ एकीभाव हुए योगी को उत्तम आनंद प्राप्त होता है।

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिक:।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन।।

अर्थात् योगी तपस्वियों में श्रेष्ठ है, शास्त्रज्ञानियों से भी श्रेष्ठ माना गया है और सकाम कर्म करने वालों से भी योगी श्रेष्ठ है। इसलिये हे अर्जुन! तू योगी हो।

प्रकृति तो विनाशशील है, उसको भोगने वाली जीवात्मा अमृतस्वरूप अविनाशी है, इस विनाशशील जड़तत्त्व और अविनाशी चेतन आत्मा दोनों को एक ईश्वर अपने शासन में रखता है। इस प्रकार जानकर उस परमेश्वर का निरंतर ध्यान करने से मन को उसमें लगाए रहने से तथा तन्मय हो जाने से अन्त में साधक उसी को प्राप्त हो जाता है। फिर समस्त माया की निवृत्ति हो जाती है। तथा उस परमदेव परमेश्वर का निरन्तर ध्यान करने से उस प्रकाशमय परमात्मा को जान लेने पर समस्त बंधनों का नाश हो जाता है। क्लेशों का नाश हो जाने पर जन्म-मृत्यु-चक्र का सर्वथा अभाव हो जाता है। अत: वह शरीर का नाश होने पर स्वर्ग तक के समस्त ऐश्वर्यों का त्याग करके सर्वथा विशुद्ध एवं पूर्णकाम हो जाता है।

तत्त्वज्ञान से चित्त को साधा जा सकता है। अत: तत्त्वज्ञानी बनने का प्रयत्न करो। **हमारा चित्त एक सरल तत्त्व है, जिसमें कोई दुस्साध्यता नहीं है। केवल दृढ़ निश्चय और तत्त्वज्ञान की आवश्यकता है।** इसकी उपस्थिति में चित्त सहज ही साधा जा सकता है। अत: तत्त्वज्ञान के लिए ध्यान योग में निरन्तर दृढ़ स्थिति बनाए रखनी चाहिए। परमात्मा तक पहुँचने की यह एक बहुत ही मजबूत सीढ़ी है। इस सीढ़ी पर चढ़ने वाला उस परम-तत्त्व को पा ही लेगा।

गीतोक्त जीवन

- श्री ब्रजमोहन शर्मा

गीता ज्ञान हृदय बसाऊँ।
जीवन को तद्रूप बनाऊँ।।

राग द्वेष रहित हो जाऊँ।
निर्मम, निष्काम बन जाऊँ।।

स्थितप्रज्ञ की बुद्धि पाऊँ।
नित्य योग में स्थित हो जाऊँ।।

सब दुनियां से तोड़ूं प्रीत।
उनको समझूँ अपना मीत।।

रात दिवस उनके गुण गाऊँ।
उनसे जुड़कर स्मृति जगाऊँ।।

उनका प्रेम प्रति पल पाऊँ।
उनसे दूजा मन नहीं लाऊँ।।

लज्जा भय और बिसरूँ मान।
अपना रहे न तन का भान।।

सुनकर उनका नामोच्चार।
उमगे मन रोम तन बारम्बार।।

प्रेम मगन हो अति अपार।
समझूँ यह संसार असार।।

माया मिथ्या को बिसराऊँ।
प्रभु के शरणागत हो जाऊँ।। ○○

गीता की व्यावहारिक भूमिका

- श्री रामस्वरूप ब्रजपुरिया

उनकी बात छोड़ भी दें जो गीता की विषयवस्तु से अपरिचित हैं और जिन्होंने श्रीमद्भगवद्गीता का गंभीरता से अध्ययन मनन नहीं किया, परन्तु गीता धर्म और मर्म के स्वाध्यायी मनीषियों के लिये भी गीता को व्यवहार में लाने में अत्यन्त कठिनाई का अनुभव होता है और कभी कभी ऐसा लगता है कि गीता का ज्ञान अद्भुत और धारण योग्य है परन्तु वर्तमान स्थिति में व्यावहारिक तो कदापि नहीं है।

गीता का मुख्य उपदेश है– 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन' (2/47) अर्थात् तुम्हारा कर्म करने में अधिकार तो है, फल में कदापि नहीं। इसका अर्थ विद्वानों ने यही लगाया कि बिना फल की कामना किये, कर्तव्य कर्म करते चलो। इसको उन्होंने निष्काम कर्मयोग नाम दिया। इसके पीछे कर्म का सिद्धान्त है। और वह यह है कि कामना का संस्कार बनता है, कर्म का नहीं। संस्कार ही संसार में आत्मा को बांध देता है और मोक्ष में यही बाधा है। इसलिये कामना को छोड़ कर ही कर्म करना चाहिये। प्राचीन ऋषियों में कुछ ने यह ठीक समझा कि प्रत्येक कर्म के साथ कामना लगी ही रहती है और बिना कामना किये कोई किसी कर्म में प्रवृत्त हो भी नहीं सकता तो कर्म ही क्यों न छोड़ दिया जाये। इसलिये मोक्ष के जिज्ञासुओं द्वारा **कर्मसंन्यास को ही उचित समझा गया तथा संन्यास धर्म की वृद्धि होने लगी। परन्तु इससे आडम्बर बहुत बढ़ा। अधिकांश लोग बाहर से तो संन्यासी हो जाते थे लेकिन मानसिक रूप से विषयों का सेवन करते रहने से वे उत्थान की अपेक्षा पतन की ओर ही चलने वाले साबित हुये।** कृष्ण ने मनुष्य को इस धर्म संकट से निकालने के लिये अर्जुन के माध्यम से कामनाओं के त्याग को महत्व दिया, कर्म के त्याग को नहीं। यह व्यवहार में कैसे आये, इसके लिये अनेक उपायों द्वारा स्थितप्रज्ञ की भूमिका में आना आवश्यक है। और जब तक स्थितप्रज्ञ नहीं हो जाते तब तक निष्काम कर्म योग के लिये भूमि के निर्माण का प्रयास तो कहा जा सकता है निष्काम कर्म योग नहीं। स्थितप्रज्ञ की स्थिति प्राप्त होना इतना सहज भी नहीं है। इसमें अनेक जन्मों की साधना की आवश्यकता है इसलिये भगवान श्रीकृष्ण ने साफ–साफ कह दिया कि **अपने आत्मस्वरूप को जाने बिना यह योग साधना हो ही नहीं सकती और यह आत्मतत्व बड़ा गहन है।** लाखों करोड़ों में कोई एक इसे जानने का प्रयास करता है और उन लाखों करोड़ों प्रयासरत साधकों में से कोई एक बिरला आत्मा को जानने में सक्षम हो पाता है।

जो अधीर हैं वे तो यह सुनकर इस परीक्षा में बैठने से ही घबरायेंगे परन्तु **एक बड़ा महत्वपूर्ण आश्वासन ऐसे लोगों को यह दिया गया कि जब तक परीक्षा में पास नहीं हो जाते तब तक बार-बार परीक्षा का अवसर दिया जायेगा और जो एक परीक्षा में अंक प्राप्त हो चुके वह योग्यता समाप्त नहीं होगी।** उससे आगे अंकों की प्राप्ति की योग्यता बनती रहेगी और एक दिन परीक्षा अवश्य उत्तीर्ण कर लोगे बशर्ते कि धैर्य और श्रद्धा न खोयी हो। इसका अर्थ यही है कि यदि साधन का प्रारंभ हो गया तो वह कभी नष्ट नहीं होगा। प्रत्येक नये जन्म (पुनर्जन्म) में पूर्व में की गई साधना के संस्कार जुड़ते रहेंगे। यदि यह आश्वासन न होता तो गीता के व्यावहारिक होने की सारी आशा ही धूमिल हो गयी होती।

अब समस्या यह है कि इस गहन आत्म तत्व को जानना होगा, कैसे? उपनिषदों में जो तर्क प्रस्तुत किये गये हैं, उनके अनुसार जिसने यह कहा कि मैंने आत्मा को जान लिया वह आत्मा को नहीं जानता और ''जिसने कहा कि मैं आत्मा को नहीं जानता वही वास्तव में आत्मा को जानता है।'' फिर आत्मज्ञान होने का प्रमाण क्या है, कैसे और किसे आत्मज्ञान होता है? उपनिषदों में ही इसका उत्तर है कि स्वरूप से सभी ब्रह्म हैं, अन्त:करण की वृत्तियों से ही जगत है, **अन्त:करण की वृत्तियां ही चैतन्याकार और ब्रह्माकार होती हैं-वे ही कहती हैं, मैं ब्रह्म हूँ जबकि ब्रह्म इस वृत्ति का साक्षी है-साक्षी मौन रहता है।**

बुद्धि से जो भी जाना जायेगा वह विचार ही होगा, आत्मा नहीं। जहाँ चेतन के पास बुद्धि है, आभास है, वहीं विचार उठते हैं, लेकिन जहाँ बुद्धि है, जहाँ आभास है, वहाँ ब्रह्म का विचार-अखण्ड का विचार नहीं उठ सकता। कारण यह कि बुद्धि एक देह में सीमित है, अत: आभास सीमित ही रहेगा और ब्रह्म है असीमित। जब बल्ब कहता है कि यह रोशनी मेरी है तब जो बिजली है और जो सब बल्बों को प्रकाशित कर रही है, वह मौन है। **बुद्धि की जानकारी बल्ब के समान है, मन से जो भी जाना जायेगा वह कामना-सम ही होगी क्योंकि संकल्प विकल्प ही मन का स्वरूप है।** इन्द्रियों से जो भी जाना जायेगा, वहाँ बाहर के संसारिक विषयों का ही स्पर्श होगा और तन से जो भी जाना जायेगा, वहाँ तक मृत्यु का भय समाप्त नहीं होगा। ये सब उपकरण आत्मज्ञान में व्यावहारिक ही नहीं बताये गये।

इस रहस्य को सुलझाने के लिये गीता स्वधर्म पालन की बात कहती है। उपकरण से ही जानने की परिपाटी में हम फिर भ्रमित होते हैं। गीता के कई व्याख्याकारों ने इसे व्यावहारिक बनाने की धुन में कर्तव्य कर्मों को स्वधर्म की संज्ञा

दी है। गीता का यह आशय कदापि मालूम नहीं होता। **धर्म का मतलब है मूल स्वभाव और संसार की प्रत्येक वस्तु का एक धर्म होता है जैसे अग्नि का धर्म दाहकता या जलाना और जल का धर्म शीतलता है।** फिर मनुष्य जीवन में धर्म के अनेक पहलू हैं जैसे पारिवारिक धर्म, मित्रधर्म, पड़ोसी धर्म, राष्ट्रधर्म, व्यक्तिगत आचार व्यवहार का धर्म आदि-आदि। श्रीकृष्ण उपदेश के अंत में कहते हैं कि इसमें से कोई धर्म स्वधर्म नहीं है इसलिये ''सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज'' तू सर्व धर्मों को छोड़कर एक मेरी शरण आ। यहाँ ''एक मेरी'' का अर्थ श्रीकृष्ण नहीं होगा। यहाँ सर्वव्यापी समष्टि ब्रह्माण्डीय आत्मा का ही सम्बोधन है क्योंकि वह सर्वत्र एक ही है। ''सबकी देह में अलग अलग-आत्मा है'' यह जानना भी अज्ञान है और स्वधर्म नहीं है। स्वधर्म तो ''मैं देह नहीं हूं आत्मा हूँ और सबमें एक ही आत्मा है'' अर्थात् ''मैं एक हूँ'', इस एक की शरण अर्थात् समग्र में स्थित होने का निर्देश है।

जब इतना साधन बन जाये तब शरीर है तो कर्म तो होगा- रुक नहीं सकता परन्तु आत्मज्ञानी कुछ नहीं करेगा क्योंकि वह न मन का (कामना) धर्म है, न बुद्धि का (विचार) धर्म है, न इन्द्रियों और शरीर का (विषय स्पर्श) ही धर्म है। गीता धर्म की व्यावहारिक भूमिका यही है और **जब तक मैं देह हूँ ऐसा मानकर व्यवहार करते रहेंगे तब तक ''अशोच्यानन्वशोचस्त्वं'', ''मामनुस्मर युध्य च'', ''मामेकं शरणं व्रज'' की स्थिति बन ही नहीं सकती** और यही तीन पद, गीता गायत्री के तीन पाद हैं और यहाँ आकर ही गीता व्यावहारिक बनती है, इसके बिना नहीं।

आशावादिता का आधार

- दादा जे. पी. वासवानी

एक अमीर आदमी के जब बुरे दिन आये तब वह बहुत गरीब हो गया। उसका दीवाला निकल गया।

उसने हिम्मत नहीं हारी। उसने एक कागज पर वह सब लिखा जो आज भी उसके पास था। **एक प्रेम व देखभाल करने वाला परिवार, एक स्वस्थ शरीर, एक सक्रिय अनुभवी मन, मित्र व शुभचिंतक, उसके व्यापारिक संबंध और उसका अनुभव। उसने सोचा कि अभी भी उसके पास प्रभु का दिया हुआ बहुत कुछ है।**

उसने नए सिरे से अपना व्यापार शुरू किया और पहले से भी बड़ा व्यापारी बन गया।

सही आशावादिता हमें पराजय से बाहर लाने में सक्षम है। OO

श्रीमद्भगवद्गीता की शैली और तात्पर्य

- डॉ. लक्ष्मीनारायण धूत

यदि सम्पूर्ण गीता में एक तारतम्यता-युक्त विवेचन देखना चाहें तो प्रथम हमें गीता की रचना शैली (विषयवस्तु के प्रस्तुतीकरण की तकनीक) के उन कुछ मुख्य बिन्दुओं पर ध्यान देना चाहिए जो गीताकार ने सोद्देश्य अपनाये हैं और उन शब्दों पर ध्यान देना होगा जिनके अर्थ कालप्रवाह से परिवर्तित हो चुके हैं।

भगवद्गीता न केवल हिन्दुओं के लिए सर्वमान्य है बल्कि विश्व के सभी विद्वानों का इसे आदर प्राप्त हुआ है। विश्व भर में जितनी टीकाएँ इस ग्रंथ पर लिखी गई हैं उतनी अन्य किसी ग्रन्थ पर नहीं। फिर भी सामान्यजन को गीता दुर्बोध प्रतीत होती है। इसे आद्योपान्त समझना उन्हें कठिन प्रतीत होता है। जितनी अधिक टीकाएँ वह पढ़ता है, उतनी ही अधिक उलझन प्रतीत होती है। इसका कारण है अधिकांश टीकाकारों की अपनी-अपनी अलग-अलग दृष्टि। वस्तुत: **गीताकार के मंतव्य को समझने की पूर्व शर्त है कि व्यक्ति अपनी निजी धारणाओं से मुक्त रहकर स्वतंत्र चिन्तन करे।** नीचे लिखे कुछ बिन्दु गीता के यथार्थ तात्पर्य को क्रमबद्ध रूप में सुसंगतता से समझने में सहायक हैं।

वक्ता-श्रोता की पात्रता- भारतीय ग्रंथों में वक्ता-श्रोता के एक से अधिक जोड़े विशेष उद्देश्य से रखे जाते थे। गीता में भी ऐसे दो जोड़े हैं- धृतराष्ट्र-संजय और अर्जुन-श्रीकृष्ण। अध्यात्म की दृष्टि से **श्रीकृष्ण हैं-व्यक्ति की आत्मबोध युक्त बुद्धि या प्रज्ञा, जो धर्म-अधर्म अर्थात् कर्तव्य-अकर्तव्य में उलझी (धर्मक्षेत्र, कुरुक्षेत्र में स्थित) बुद्धि रूपी अर्जुन को मार्ग दर्शन दे रहे हैं।** दूसरी ओर धृतराष्ट्र के रूप में कामना में डूबे मन को हताशा की स्थिति आने पर, निष्काम मन रूप संजय यह उपदेश सुना रहे हैं। धृतराष्ट्र को यह प्रसंग संजय ने कुरुक्षेत्र से हस्तिनापुर लौटकर तब सुनाया था जब भीष्म पितामह, जो कौरवों के लिए युद्ध जीतने की आशा के आधार स्तंभ थे; युद्ध में धराशायी हो गए थे। यहाँ संकेत यह दिया गया है कि **जब तक व्यक्ति का मन किसी प्रबल भौतिक कामना में डूबा हुआ है, गीता अथवा कुछ भी अध्यात्म-ज्ञान, अग्राह्य ही बना रहेगा। कामनापूर्ति की आशा टूटने पर ही ज्ञान ग्रहण की कुछ पात्रता बन सकती है।**

समस्या का चित्रण- हमारे ग्रंथों में बहुधा यह शैली अपनाई गई है कि ग्रन्थ के प्रारम्भ में मानव मन की किसी समस्या विशेष को एक जीवंत चित्र द्वारा प्रस्तुत कर

दिया जाता है जिसका समाधान करना उस ग्रंथ का विषय होता है। प्रथम अध्याय में अर्जुन के व्यामोह का विस्तृत चित्रण हमें स्मरण दिलाता है कि ग्रंथ में ऐसा कोई विषय या शब्द नहीं हो सकता जो अर्जुन के इस मोह को दूर करके उसे उसके कर्त्तव्य (जगत हितार्थ युद्ध) कर्म की प्रेरणा देने वाला न हो। उदाहरणार्थ पांचवें व छठे अध्याय में कर्म संन्यास और ध्यान साधना का प्रतिपादन हुआ है, ऐसा अर्थ लेना उपयुक्त नहीं हो सकता है। वस्तुत: वह वर्णन कर्मयोग की अपेक्षा इन साधनों की कठिनता को प्रकाशित करके अर्जुन को कर्त्तव्य कर्म में प्रेरित करने के लिए है।

क्रमहीनता एक शिल्प–गीता की वर्णन शैली ऐसी है कि उसमें बहुधा क्रमबद्धता का अभाव अथवा कथन का तात्पर्य अस्पष्ट प्रतीत होता है। वस्तुत: यह आभासी क्रमहीनता श्लोकों के बीच अथवा प्रश्न और उत्तर के बीच सीधे संबंध की जो कमी दिखती है–वह एक अति महत्वपूर्ण और उद्देश्यपूर्ण शिल्प है। हेतु यह है कि **जो कहा जा रहा है उसे पाठक की मात्र स्थूल स्मृति ही ग्रहण न करे, वरन् मनन के द्वारा उसके अंतर्मन में पैठे।**

चिन्तन को प्रेरणा देने के लिए शब्द समूह– चिन्तन को बढ़ावा देने हेतु एक और शैली का प्रयोग गीता में किया गया है। कुछ शब्दों का एक साथ (समूह के रूप में) प्रयोग किया गया है। किन्तु उनमें से एक शब्द का भाव स्पष्ट करके अन्य शब्दों की व्याख्या नहीं दी गई है। उद्देश्य यहाँ भी यही है कि पाठक चिन्तन मनन करके उन शब्दों के विषय अनुरूप भावों पर स्वयं पहुँचे। उदाहरणार्थ, यज्ञ, दान, तप–इस शब्द समूह का प्रयोग कई बार हुआ है। इनमें से व्याख्या केवल 'यज्ञ' शब्द की दी गई है। **यज्ञ शब्द का भावार्थ 'जगत हितार्थ कर्म' लेने पर स्वाभाविक ही गीता में प्रस्तुत 'दान' शब्द का भावार्थ बनता है– किसी व्यक्ति या व्यक्ति समूह के हितार्थ साधक द्वारा किया गया 'नि:स्वार्थ कर्म 'और तप का अर्थ होगा वे कर्म जो व्यक्ति को 'दान' अथवा 'यज्ञ' कर्म करने हेतु उसे योग्य बना सकें।** ऐसे कर्म प्रारम्भ में साधक को कष्टप्रद प्रतीत होने से तप हैं किंतु उनका अभ्यास व्यक्ति को नि:स्वार्थ कर्म करने की योग्यता प्रदान करता है।

इसी प्रकार गीता में कर्म, अकर्म और विकर्म का उल्लेख (4.16 से 18 में) हुआ है। किन्तु यहाँ केवल इनको जानने का महत्व बतलाकर इनका भावार्थ आगे समझने को कहा गया किन्तु आगे (8.3) केवल 'कर्म' की व्याख्या की गई। कहा गया कि इस जड़ जगत में होने वाली क्रियाएं (भूत भाव उद्‌भव की) कर्म हैं। विषय के

अनुरूप भावार्थ यह है कि जड़ सृष्टि की वे सभी क्रियाएं जो चर-अचर सृष्टि की पोषक और विकास प्रक्रिया में सहायक हैं वे कर्म हैं। इस संदर्भ में 'अकर्म' और 'विकर्म' को अब हमें समझना होगा। मनुष्येतर जैविक सृष्टि में भी परस्पर सहजीवन का सिद्धान्त कार्य कर रहा है जिसके द्वारा समग्र विकास प्राण-मन-बुद्धि-परा-बुद्धि आत्मा जागृति विकास का क्रम सतत चल रहा है क्योंकि इस जैविक सृष्टि में चेतना के होते हुए भी कर्त्तापन का भाव नहीं है इसलिए यहाँ की सभी क्रियाएँ 'अकर्म' हैं। कर्म और अकर्म क्रियाएं विकास की पोषक होने से इनमें भेद नहीं देखने की बात कही गई है (4.18)। किन्तु मनुष्य की बात थोड़ी भिन्न है। मनुष्य न तो प्रकृति के पूर्ण अधीन है और न अभी प्रकृति से स्वाधीन हुआ है इसलिए वह स्वार्थ (विपरीत) और परमार्थ (विशिष्ट) दोनों प्रकार के कर्म करता है। अत: दोनों का समावेश करते हुए मनुष्य के सभी कर्मों को 'विकर्म' नाम दिया गया है। संकेत यह है कि मनुष्य को विवेक का उपयोग करके अपने क्रिया कलापों की दिशा निर्धारित करनी चाहिए।

शब्दों के उचित अर्थ-गीता में प्रयुक्त कुछ शब्दों का वर्तमान रूढ़ अर्थ लेने पर मूल विचार प्रवाह में विसंगति बन जाती है। इसका कारण या तो यह होता है कि उन शब्दों के भाव काल प्रवाह में परिवर्तित हो चुके हैं अथवा शब्दों का आध्यात्मिक अर्थ छोड़कर हमने भौतिक अर्थ ले लिया है। ऐसे स्थलों पर हमें शब्द का उचित अर्थ लेना चाहिए। उदाहरणार्थ ज्ञान, भक्ति, श्रद्धा, उत्तरायण आदि शब्द हैं। इन शब्दों का वर्तमान रूढ़ अर्थ में प्रयोग गीता में नहीं हुआ है। गीता के अनुसार जगत के रूप में परमेश्वर ही व्यक्त हो रहा है, यह उसका व्यक्त समष्टि स्वरूप है। व्यष्टि उसका अंश है किन्तु उसकी स्वतंत्र सत्ता न होकर जीवित शरीर के कोषाणु की भांति वह समष्टि का अंश है। यह जानना ज्ञान है किंतु ज्ञान या जानने का स्तर व्यक्ति की योग्यतानुसार बौद्धिक अथवा आनुभाविक होगा। उस जाने हुए के अनुरूप अपने व्यक्तित्व के प्रत्येक स्तर को-कर्म, मन, बुद्धि को उस समग्र के लिए समर्पित करना भक्ति है जिसके साथ क्रमिक पद सप्तदा भक्ति के रूप में (श्लोक 12.6 से 12.11 में) वर्णित किए गए हैं। यह गीता की भक्ति है। इसे नारद, शांडिल्य, तुलसी, मीरा, सूर अथवा चैतन्य की भक्ति (और इन सबकी भक्ति भी सर्वथा एक जैसी कहाँ है) मान लेना, गीता को समझने में बाधक है। गीता के अनुसार प्राप्त ज्ञान (उसकी सप्त भूमिकाओं में से कोई हो, उस) के अनुसार कर्म करना भक्ति है। इसी प्रकार श्रद्धा का यदि विश्वास परक प्रचलित अर्थ लें तो 17वें अध्याय में अर्जुन के एक प्रश्न के उत्तर में भगवान कृष्ण ने जो कुछ कहा है वह असंगत बन जाता है। आहार, यज्ञ,

दान, तप तथा ईश्वर स्मरण (ॐ तत् सत्) का त्रिगुणात्मक वर्णन सटीक नहीं बैठता। स्पष्ट है कि यहाँ हमें श्रद्धा शब्द का वह अर्थ लेना होगा जो पूरे वर्णन को युक्तियुक्त बनाता हो। शब्द व्युत्पत्ति अनुसार श्रद्धा-श्रत्+धा-पकाई हुई बुद्धि, अर्थात् वे विचार जो व्यक्ति ने सत्व रूप में अपने हृदय में ग्रहण कर लिए हैं, अर्थात् संस्कार या स्थायी वृत्तियाँ। इस अर्थ से उपरोक्त वर्णन सुसंगत बन जाते हैं।

उत्तरायण-दक्षिणायनकाल में प्रयाण करने (मरने) पर प्राप्त होने वाली गतियों के कथन (8.24,25) का जैसा अर्थ टीकाओं में देखने में आता है, वह थोड़ा सा विचार करने पर पूरी तरह असंगत सिद्ध हो जाता है। महाभारत युद्ध प्रारम्भ करने का दिन श्रीकृष्ण ने ही तय किया था। यदि श्रीकृष्ण की मान्यता यह होती कि दक्षिणायन काल में मरने वालों की मुक्ति नहीं होती है तो एक तो दक्षिणायन काल में युद्ध करने की घोषणा करना और दूसरे युद्ध के मैदान में अर्जुन को युद्ध करने के लिए प्रेरित करते हुए यह तथाकथित बात कहना पूर्णत: अंतर्विरोधी होगा। वस्तुत: यहाँ भौगोलिक उत्तरायण-दक्षिणायन की बात ही नहीं है। यहाँ हमें उत्तरायण सहित पूरे प्रकरण का आध्यात्मिक विकास संबंधित अर्थ लेना होगा। उपरोक्त प्रकार के बिन्दुओं पर ध्यान देने से गीता के एक क्रमबद्ध सुसंगत अर्थ पर पहुँचने में सहायता मिलती है। तब गीता का वर्णन टूटा-बिखरा हुआ, बुद्धियोग, निष्कामयोग, कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग आदि के भानुमति के कुनबे के रूप में विषय की भूमिका से असंगत न रहकर अर्जुन अथवा हमारी मानसिक समस्या के पूर्णत: सुसंगत समाधान के रूप में दिखने लगता है। उस दृष्टि से गीता का तात्पर्य क्या है, उस पर अब हम एक विहंगावलोकन कर लें।

गीता का सुसंगत तात्पर्य-अर्जुन की तरह हम भी बहुधा कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य के व्यामोह में पड़ जाते हैं। इसका कारण यह होता है कि हम मूल सत्य से अनभिज्ञ होने के कारण सुनी हुई बातों में सामंजस्य नहीं बिठा पाते हैं। श्रुतिविप्रतिपन्ना (2.53) हो जाते हैं। प्रथम अध्याय इसी स्थिति का चित्रण करता है। व्यामोह के निवारण हेतु श्रीकृष्ण, व्यक्ति और जगत के संरचनात्मक तत्व और इसके बीच जो सम्बन्ध है, उसका परत-परत जिस प्रकार दिग्दर्शन कराते हैं वह दूसरे अध्याय से प्रारम्भ होता है। मनुष्य केवल देह नहीं है। विनाशशील देह में एक अविनाशी चेतन तत्व के रूप में देही भी है (अध्याय-2)। इन दोनों तत्वों (देह और देही) की स्वतंत्र सत्ता मात्र एक आभास है। ये गतिशील समष्टि के विकासशील अंश हैं। सृष्टि के इस सार्वभौम नियम को यज्ञ के रूपक द्वारा व्यक्त किया गया है (अध्याय 3)। सम्पूर्ण जड़-चेतन सृष्टि

में, चर–अचर जगत में, इस आधारभूत प्रक्रिया द्वारा ही समग्र विकास की धारा प्रवाहित हो रही है। बाह्य जगत (ब्रह्माण्ड) में और हमारे शरीर (पिंड) में, मेक्रो एवं माईक्रो, दोनों स्तरों पर इस 'यज्ञ' प्रक्रिया को देखा जा सकता है। जहाँ प्रकृति में जैविक विकास की प्रक्रिया चल रही है, वहीं चेतना का सर्वोच्च तत्व परमात्मा स्वयं भी आवश्यकता पड़ने पर इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु अवतार ग्रहण करता है। 'यदा यदा हि धर्मस्य...' वचनों का यही संदेश है । व्यक्ति यदि इस यज्ञमय सृष्टि के सत्य को जानकर (अध्याय–4) अपना जीवन जीने का संकल्प कर ले तो उसका सीमित दु:ख, सुखमय व्यष्टि जीवन तब असीम, समष्टिमय, आनंदमय और पूर्ण हो उठेगा। सारांश यह है कि **जीवन का एकमात्र उद्देश्य है सीमित अहम् का विसर्जन और समग्र में जागृति होना।** इस उद्देश्य की यथाशीघ्र प्राप्ति के दो मार्ग हैं। एक है आंतरिक साधनों का कर्म–संन्यास मार्ग (पूजा–अर्चना, नाम–जप, तंत्र–मंत्र, ध्यान, विपश्यना, कुंडलिन जागरण, शक्तिपात आदि) और दूसरा है बाह्य साधना वाला कर्ममार्ग(3.3)। **कर्म मार्ग सभी दृष्टियों से उपादेय है।** ईश्वर की सत्ता को यदि न भी स्वीकार किया जाए तो सांख्य (देह–देही विवेक) के साथ बुद्धियोग (अपनी आत्मोन्नति के लिए निष्काम होकर परार्थ कर्म)। यह कर्मयोग का स्वरूप है (अध्याय2)।

ईश्वर की सत्ता को स्वीकार करने की दशा में वह जगत में किस प्रकार क्रिया शील है इसका सविस्तार दिग्दर्शन (अध्याय 3,4 और 7 से 11 में) करवाकर उस परमेश्वर के व्यक्त रूप का जगत की सेवा अर्थात् भक्ति के रूप में कर्मयोग का निरूपण (अध्याय 12 में) किया गया है। इस मार्ग के औचित्य को तथ्यों के विश्लेषण द्वारा बुद्धि में अच्छी प्रकार बैठाने हेतु आगे (अध्याय 13 से 18) की विषयवस्तु है।

गीता का निश्चित मत है कि कर्म मार्ग वैज्ञानिक आधार से युक्त होने के कारण सभी के लिए सहज, सरल और निरापद है। इस मार्ग की विशेषता यह है कि व्यक्ति को अपने पूर्व संचित संस्कारों के विरुद्ध लड़ना नहीं पड़ता । शरीर, मन, बुद्धि, अहंकार स्तर के जो संस्कार व्यक्ति को उसके विगत जन्मों में प्राप्त हुए हैं उनमें से जो सबसे प्रबल हैं, उनके अनुरूप (शूद्र, वैश्य, क्षत्रिय अथवा ब्राह्मण) जीवनवृत्ति ग्रहण करके सेवा भाव से नि:स्वार्थ कर्म करने से एक तो संस्कारों का क्षय होता है, दूसरे परहित कर्म भावना से जुड़े रहने से हृदय या अन्तर्मन में मैं–पन की सीमितता के स्थान पर अपनेपन की विशालता ग्रहण होती जाती है। ○○

प्रश्नोत्तर

- श्रीमती राधा नेमा

प्रश्न– स्थिर बुद्धि और अस्थिर बुद्धि वाले पुरुष के आचरण में क्या अंतर है?

उत्तर– स्थिर बुद्धि वाला पुरुष दु:खों की प्राप्ति में उद्वेग रहित, सुखों की प्राप्ति में सम रह कर, सम्पूर्ण कामनाओं को त्याग कर आसक्ति रहित हो जाता है और अपने आपको ईश्वरार्पण कर देता है। और जो सांसारिक विषयों में रहकर अपने आप को अपने अविवेक के कारण, कर्त्ता समझता है, वह व्यक्ति अस्थिर बुद्धि वाला व्यक्ति है। **न जीते हुए मन और इन्द्रिय वाले पुरुष की निश्चयात्मक (स्थिर) बुद्धि नहीं होती।** वह मनुष्य अस्थिर बुद्धिवाला होता है।

प्रश्न – हमें किस भाव से कर्म करना चाहिए?

उत्तर– **सम्पूर्ण आसक्ति को त्यागकर मन और इन्द्रियों को वश में करके अनासक्त होकर कर्मयोग का आचरण करने वाला व्यक्ति श्रेष्ठ है, मोक्षपथगामी है।** शास्त्र विधि से कहे हुये स्वकर्म का पालन करना चाहिये, यह आवश्यक है। मनुष्य कर्म किये बिना रह नहीं सकता। आसक्ति त्यागकर ही कर्म करना श्रेयस्कर है। **व्यक्ति को शास्त्र विहित कर्तव्य कर्म करना चाहिये।**

प्रश्न– मनुष्य कर्म बंधन से कैसे छूट सकता है?

उत्तर– जो व्यक्ति उस अर्न्तयामी भगवान को अपना सब कुछ समर्पित कर एवं सम्पूर्ण कर्मों के फल को अर्पण कर आशारहित, ममता से रहित होकर कर्म करते हैं वे कर्म बन्धन से छूट जाते हैं। जो व्यक्ति दोषदृष्टि से रहित होकर मेरे में श्रद्धा रखने वाला और मेरे विचारों को ग्रहण कर उसके अनुसार आचरण में लाने वाला है वह निस्सन्देह कर्म बन्धन से छूटकर भव सागर के बंधन से पार हो कर मेरा सान्निध्य प्राप्त कर लेता है।

प्रश्न– मनुष्य के शत्रु कौन हैं, जिनसे हमें सावधान रहना चाहिये?

उत्तर– राग–द्वेष ये दोनों मनुष्य के शत्रु हैं। इन दोनों से बचने की आवश्यकता है।

प्रश्न– कामना किस प्रकार जीवात्मा को मोहित करती है?

उत्तर- कामनाएं ही संपूर्ण पापों की जड़ हैं। मन, बुद्धि और इंद्रियां ये कामना के वासस्थान हैं। यह कामना ही मन, बुद्धि और इंद्रियों द्वारा ज्ञान को आच्छादित करके जीवात्मा को मोहित कर देती है। इन्हीं कामनाओं से वशीभूत मनुष्य कर्म करता रहता है। **मनुष्य को चाहिए कि अपने मन और इंद्रियों को वश में करके ज्ञान का नाश करने वाले काम को अवश्य ही त्याग देवे।**

स्थितप्रज्ञ के लक्षण

- स्वामी मुक्तानंदजी सरस्वती
पीठाधीश्वर-युग धर्म पीठ

अर्जुन ने श्रीकृष्ण भगवान् से सीधा प्रश्न किया, हे केशव! स्थितप्रज्ञ व समाधिस्थ की परिभाषा क्या है? वह किस प्रकार से बातचीत व व्यवहार करता है? कैसे बैठता है? समाज में किस प्रकार से विचरण करता है ? अर्जुन के ये सीधे सादे प्रश्न हैं, क्योंकि **मनुष्य के तत्वज्ञान की पहचान उसके प्रवचनों से या उपदेशों से नहीं होती!** दूसरे अध्याय में अंतिम अठारह श्लोकों में मनुष्य के सामान्य व्यवहार का विवेचन भगवान ने किया है। इन अठारह श्लोकों में भगवान् कहते हैं **संसार में सुख-दु:ख, शुभ-अशुभ, राग-द्वेष, काम-क्रोध, भोग-त्याग, लोभ-मोह, आदि हर मनुष्य के जीवन को प्रभावित करते हैं, परंतु स्थितप्रज्ञ के व्यवहार आदि पर इनका कोई प्रभाव नहीं पड़ता क्योंकि उसका सम्बन्ध चैतन्य के साथ होता है। चैतन्य के साथ रहने वाला इन सब प्रभावों का द्रष्टा होता है। अत: उसके समस्त कार्यों पर इन परिस्थितियों का प्रभाव नहीं दीखता।**

किन्हीं कारणों से यदि इनका आक्रमण तीव्र हो जाये तथा ज्ञानेन्द्रियों तथा कर्मेन्द्रियों पर इनका प्रभाव पड़ने का खतरा हो तो स्थितप्रज्ञ कछुवे की तरह अपनी इंन्द्रियों को सिकोड़कर सुरक्षित कर लेगा। **काम, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष, लोभ, मोह आदि की चंचल तरंगों के घोड़े स्थितप्रज्ञ पर सवार नहीं होते।** स्थितप्रज्ञ तो इनको अपने घोड़े की तरह, सेवक की तरह इस्तेमाल करता है। इनसे नाहक ही दुश्मनी मोल नहीं लेता। **आवश्यकतानुसार युक्तिपूर्वक इनको इस्तेमाल करने वाला व्यक्ति ही स्थिरचित्त ब्रह्मरूप होता है।**

एनफील्ड, अस्पताल रोड़, विकास नगर, देहरादून-248198

गीता की टेक : युध्यस्व

- पूज्य स्वामी श्री आत्मानंदजी

श्मशान-वैराग्य

अर्जुन क्षणिक वैराग्य के आवेश में आकर संसार को छोड़ने की बात कहने लगा था, पर श्रीकृष्ण उसे समझा देना चाहते हैं कि ऐसा वैराग्य अधिक देर तक नहीं टिकता। श्रीरामकृष्णदेव कहते थे, जैसे गरम तवे पर एक बूंद जल गिरे, तो 'छन्' से वह भाप बनकर उड़ जाती है, उसी प्रकार संसारी व्यक्तियों को वैराग्य होता है। वह एक क्षण ही टिकता है और दूसरे क्षण 'छन् से' उड़ जाता है। इसी प्रकार के वैराग्य को शास्त्रों ने 'श्मशान-वैराग्य' या 'मर्कट-वैराग्य' कहकर पुकारा है। जैसे, **जब हमारा कोई प्रियजन काल-कवलित होता है, तो श्मशान में उसे चिता में जलते देख हमारा मन विषाद से भर जाता है। उस समय जगत् मिथ्या प्रतीत होता है, संसार असार लगता है और हमें सब कुछ फीका-फीका मालूम पड़ता है।** ऐसी अवस्था में यदि दु:ख का आवेश कुछ अधिक हो जाय, तो हम इस संसार को छोड़कर भाग जाने की भी बात सोच सकते हैं। यह सब श्मशान या मर्कट वैराग्य की श्रेणी में आता है।

किसी का घर में किसी से झगड़ा हो गया और वह गुस्से में आकर घर छोड़कर चला गया। चिट्ठी में लिख गया कि मैं घर से तंग आ गया हूँ इसलिए साधु बनने हिमालय की ओर जा रहा हूँ। चिट्ठी पाकर घर के लोग रोने-पीटने लग गये। स्त्री बड़ी विकल हो गयी, माता-पिता सिर धुनने लगे। सभी ओर उसे खोजने के लिए आदमी भेजे गये, पर वह न मिला। अकस्मात् कुछ महीनों के बाद एक दिन काशी से उसकी चिट्ठी आ गयी। तुम लोग चिन्ता मत करो, मैं मजे में हूँ। मेरी नौकरी लग गयी है। थोड़े ही दिनों में छुट्टी लेकर आ रहा हूँ। यह श्मशान वैराग्य का उदाहरण है। **हम भी कभी-कभी संसार की परिस्थितियों से घबड़ाकर सब कुछ छोड़ देने की सोचते हैं। अर्जुन ने भी ऐसा ही सोचा था। पर कृष्ण इस प्रवृत्ति को नष्ट कर देने के लिए कहते हैं। वे तो एक ही बात अर्जुन से कहते हैं, "युध्यस्व"-अर्जुन! तू युद्ध कर।**

गीता की टेक : 'युध्यस्व'

अतएव, गीता मनुष्य को संसार में रहना सिखाती है। **संसाररूपी काजल की कोठरी में रहकर हम काजल की कालिमा से कैसे बच सकते हैं, यह गीता की शिक्षा है। हमें संसार में ही रहना है।** भले कुछ समय के लिए हम निर्जन में चले जायें, किसी गहन अरण्य में जाकर गुफा में बैठकर कुछ दिन बिता दें, पर आखिर हमें पुनः संसार

के कोलाहल में ही लौट आना है। यह संसार ही मोह का रूप है और इस मोह के मध्य रहकर अपने को मोह से बचाना है। **भगवान् श्रीकृष्ण यही सीख देते हैं कि मोह में रहकर मोह से निर्लिप्त कैसे हुआ जाय।** तभी तो वे बारम्बार अर्जुन को युद्ध करने की प्रेरणा देते हैं। वे उसे एक ओर आत्मा का उपदेश देंगे, कहेंगे-अर्जुन! आत्मा अजन्मा और अविनाशी है। अद्वैत का सारा निचोड़ अर्जुन के सामने रखेंगे और फिर कहेंगे-'युध्यस्व'। यही गीता की टेक है। जैसे गीत की टेक होती है और गीतकार बारम्बार उस टेक में उतर आता है, उसी प्रकार यह **'युध्यस्व' गीता की टेक है। चाहे आत्मा का उपदेश हो या लौकिक दृष्टि से विचार हो, प्रत्येक ऐसे विचार के उपरान्त श्रीकृष्ण के मुख से अर्जुन के प्रति यही टेक सुनाई पड़ती है। जरा देखें-**

– हे भारत! इस नाशरहित अप्रमेय नित्यस्परूप जीवात्मा के ये सब शरीर नाशवान् कहे गये हैं, इसलिए तू युद्ध कर।।(2-18)।।

– अपने धर्म को देखकर भी तू भय करने के योग्य नहीं; क्योंकि धर्मयुक्त युद्ध से बढ़कर दूसरा कोई कल्याण-कारक कर्तव्य क्षत्रिय के लिए नहीं है।।(2-31)।।

– हे पार्थ! अपने आप प्राप्त हुए और खुले हुए स्वर्ग के द्वार-रूप इस प्रकार के युद्ध को भाग्यवान् क्षत्रिय लोग ही पाते हैं।(2-32)।।

– हे कौन्तेय! या तो मरकर तू स्वर्ग को प्राप्त होगा या फिर जीत कर पृथ्वी को भोगेगा। अतएव तू युद्ध के लिए निश्चय करके खड़ा हो।। (2-37)।।

– सुख-दुःख, लाभ-हानि, जय-पराजय को समान समझकर युद्ध के लिए तैयार हो जा। इस प्रकार युद्ध करने से तू पाप को प्राप्त नहीं होगा।।(2-38)।।

– हे अर्जुन! तू ध्याननिष्ठ चित्त से समस्त कर्मों का मुझ में समर्पण करके, आशा, ममता और संताप को त्यागकर युद्ध कर।।(3-30)।।

अतएव हे अर्जुन! तू सब समय निरन्तर मेरा स्मरण कर और युद्ध कर। इस प्रकार मुझमें अर्पित किये हुए मन, बुद्धि से युक्त हुआ निस्सन्देह तू मुझ को ही प्राप्त होगा।(8-7)।।

– हे सव्यसाचिन्! इन द्रोणाचार्य, भीष्म, जयद्रथ, कर्ण एवं अन्य और भी अनेक शूरवीर योद्धाओं को, जो मेरे द्वारा पहले से ही मारे जा चुके हैं, तू मार। तू डर मत। तू निस्संदेह युद्ध में बैरियों को जीतेगा, अतएव उठ, युद्ध कर।। (11-34)।।

इसी को हमने गीता की टेक कहा। **जब युद्ध करने आये हो, तो फिर मुँह पीछे न फेरो। युद्धभूमि में पीठ न दिखाओ। हम भी तो अर्जुन के समान युद्ध में रत हैं। जैसे**

अर्जुन दो सेनाओं के बीच में खड़ा था, उसी प्रकार हम भी दो सेनाओं का सामना कर रहे हैं। हमारे भीतर न जाने कितने जन्मों से सतत महाभारत चल रहा है। अर्जुन का महाभारत तो अठारह दिन में समाप्त हो गया, पर हमारे भीतर का महाभारत न जाने कितने जन्मों से अनवरत चल रहा है। हमारे भीतर भी दो सेनाएँ हैं–एक है देवताओं की सेना, शुभ प्रवृत्तियों की सेना और दूसरी है असुरों की सेना, अशुभ प्रवृत्तियों की सेना। देवासुर–संग्राम प्रत्येक मनुष्य के अन्तर में चल रहा है और हम भी अर्जुन की तरह बीच में खड़े हैं। अच्छाई और बुराई की यह ठनाठनी क्षण–प्रतिक्षण चल रही है। हमारे भीतर आत्मा की आवाज उठती है, फिर शैतान भी अपने बोल सुनाता रहता है। आत्मा की आवाज हमें कुपथ पर जाने से रोकती है, हमें सावधान करती है कि कहीं असुरों के फन्दे में पड़ न जाना। वह हमारा सही–सही मार्गदर्शन करती है। पर शुभ की यह आवाज बहुधा क्षीण होती है। दूसरी ओर, अशुभ मानो बुलन्द आवाज में हमसे कहता है–अरे, यह क्या अच्छाई–अच्छाई की रट लगा रखी है! संसार में अच्छाई कहीं है भी? छल–प्रपंच, कपट–द्वेष का ही नाम तो संसार है। अगर आगे बढ़ना है तो दूसरों को छलो। अगर संसार में बचे रहना है तो दूसरों को ठगो, सबसे धोखाधड़ी करो,येन–केन–प्रकारेण अपना उल्लू सीधा करो। और हम इन आवाजों के बीज, अर्जुन के समान विभ्रमित हो, खड़े हो जाते हैं। हमें कुछ सूझ नहीं पड़ता। बलात् हमारे पैर असुर–सेना की ओर खिंचने लगते हैं। तब मन के किसी अज्ञात कोने से एक धीमा–सा स्वर सुनाई पड़ता है– मैं तुम्हारा शुभाकांक्षी हूँ। मैं तुम्हारे भीतर का शुभ हूँ, देवता हूँ; भले ही अभी शिथिल हूँ, पर पूरी तरह सोया नहीं हूँ। जिस रास्ते पर तुम कदम बढ़ा रहे हो, उससे तुम्हारा अमंगल ही होगा। और तब हमारे पैर ठिठक जाते हैं। हृदय के भीतर मंथन होने लगता है। **एक ओर संसार के सुनहले सपने, तड़क–भड़क का प्रलोभन, आमोद–प्रमोद का जीवन, इन्द्रियों को उत्तेजित और तृप्त करने के साधन, और दूसरी ओर जीवन के शाश्वत मूल्यों की झाँकी, इन्द्रियों और मन के स्वामी बनने का दृश्य, त्याग और संयम का जीवन। और इन दोनों के बीच हम मथित होने लगते हैं।** ○○

काम का प्रहार स्थितप्रज्ञ का बल है, प्रहार माने त्याग। ''प्रजहाति'' का अर्थ है काम का परित्याग। कामी पुरुष की बुद्धि कैसे स्थिर होगी? किसी को धन चाहिए ईमानदारी से। ईमानदारी से नहीं मिले तो बेईमानी से चाहिए। यह कामना बुद्धि को स्थिर नहीं रहने देती। यदि बुद्धि को निश्चयात्मिका बनाना हो तो कामना का परित्याग कीजिए। –स्वामी अखण्डानन्द सरस्वतीजी

गीता जीवन जीने की कला है।

- डॉ. रामचरण महेन्द्र

माननीय नरेश, मैं आपको अपना भाष्य सुनाना चाहता हूँ। नरेश ने पूछा, देवदत्त शास्त्री , आप काशी से अध्ययन कर लौटे हैं। वहाँ आपने अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थों का शास्त्रीय अध्ययन किया होगा। आप मुझे किसका भाष्य सुनाना चाहते हैं?

देवदत्त शास्त्री कुछ देर सोचते रहे। नरेश पता नहीं क्या चाहते हैं? वे फिर बोले, ''श्रीमान् गीता का भाष्य सुनाने की बड़ी इच्छा है। उसकी मैंने मौलिक व्यावहारिक सर्वोपयोगी व्याख्या की है। आप इस को पसन्द करेंगे। वह पूरे ज्ञान और अध्ययन के बाद लिखी है।''

काशी नरेश देवदत्त शास्त्री के कथन पर विचार करते रहे। कुछ देर चुप रहे। शायद मन ही मन कुछ उधेड़बुन में लगे थे। देवदत्त शास्त्री उत्तर में, आज्ञा की प्रतीक्षा कर रहे थे। ऐसा कौन है जो गीता का भाष्य न सुनना चाहेगा? अनेक विद्वानों ने गीता को स्पष्ट करने के प्रयत्न किये हैं। देवदत्त की यह व्याख्या भी शोधपूर्ण गंभीर चिन्तन का फल होगा।

फिर नरेश एक अप्रत्याशित स्वर में बोले, **आप कृपया अपने घर पधारें। सात बार फिर गीता पढ़ें। तब आएं। फिर मैं आपका भाष्य सुनूंगा।**

यह अजीब आज्ञा थी। देवदत्त शास्त्री ने गीता को अनेकों बार पहले भी पढ़ा था। अब फिर सात बार पढ़ने को क्या बाकी रह गया। वे **नरेश की आज्ञा पर विचार करते रहे। क्रोधित हुए कि उनकी विद्वत्ता पर प्रश्नचिह्न लग रहा था।**

फिर अपने घर गये। पत्नी को यह अनुभव सुनाया। आवेश में जले भुने रहे। पत्नी समझदार थी। उसने राजा की आज्ञा ज्यों की ज्यों मानने की सलाह दी। अत: शास्त्रीजी ने फिर गीता को पढ़ा। बार-बार बढ़ते-पढ़ते उन्हें उसमें कुछ भी नया नहीं लगा। उन्होंने सारे श्लोक याद किये हुए थे। वे फिर नरेश के पास उपस्थित हुए।

श्रीमान् आपकी आज्ञा का पालन किया है। सात बार फिर गीता का पाठ किया है। आप मेरा भाष्य सुन लीजिए।

अभी नहीं, राजा ने शान्त मृदु स्वर में फिर वही बात कही। राजा ने पुन: उन्हें वापस भेज दिया। फिर पढ़ कर आओ।

जाओ, और सात बार फिर पढ़कर आओ। वही आज्ञा थी। जब वे घर पर गये, तो पत्नी ने फिर समझाया, राजाज्ञा का पालन कीजिए। उसमें कोई गूढ़ आशय छिपा होगा। जो आपकी पकड़ में नहीं आया है। (शेष पृष्ठ 41 पर)

क्लैब्यं- एक मानसिक स्थिति

- डॉ. कृष्णचंद्र शुक्ल

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप॥2-3॥

साधारणत: जैसे कि लगभग सभी अनुवादकों ने लिया है, क्लैब्यं शब्द का अर्थ कायरता अथवा नपुंसकता लिया जाता है। संस्कृत कोषों में भी यही अर्थ दिए हैं। परंतु जिज्ञासा होती है कि क्या वास्तव में अर्जुन में कायरता अथवा नपुंसकता प्रवेश कर गई थी? अर्जुन स्वयं नरावतार थे। यह न भी माना जाये तो भी उनके अति श्रेष्ठ धनुर्धर, अति वीर एवं साहसी होने में कोई संदेह नहीं है। उन्होंने स्वयं अपना वर्णन करते हुए भी ''शारीरिक'' स्थिति बताई है-(एक) सीदन्ति मम गात्राणि, (दो) मुखं च परिशुष्यति, (तीन) वेपथुश्च शरीरे मे, (चार) रोमहर्षश्च जायते, (पांच) गाण्डीवं स्रंसते हस्तात्, (छह) त्वक्चैव परिदह्यते, (सात) न च शक्नोम्यवस्थातुं और ''मानसिक'' स्थिति बताई है-''भ्रमतीव च मे मन:''(1/29-30)। शेष वर्णन श्लोक 46 तक उसके तर्कों से भरा पड़ा है, जो उसकी बुद्धि की स्थिति दर्शाता है।

इस प्रकार उसकी शारीरिक, मानसिक एवं बुद्धि की स्थिति स्पष्ट है। भगवान ने भी श्लोक 2/2 में उसके अंदर उस समय कश्मलता देखी और आश्चर्य व्यक्त करते हुए कहा भी कि ''कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम्''। अब नपुंसकता अथवा कायरता शब्दों को लें तो उनमें शारीरिक स्थिति ही अधिक होती है। हमारी चर्चा अर्जुन द्वारा बताई शारीरिक स्थिति में नपुंसकता अथवा कायरता नहीं है। वे सातों लक्षण मानसिक हैं अर्थात् मानसिक स्थिति के कारण हैं। उसने अन्त में 'भ्रमतीव च मे मन:' स्वीकार किया ही है। भगवान् श्रीकृष्ण ने भी श्लोक की दूसरी पंक्ति में हृदयदौर्बल्यं शब्दों का प्रयोग किया। यहाँ हृदय शब्द मन-बुद्धि के अर्थ में ही लिया जाना चाहिए, अधिक से अधिक अन्त:करण चतुष्टय के लिए लिया जा सकता है। **अत: क्लैब्यं शब्द का अर्थ सीधे-सीधे कायरता अथवा नपुंसकता न लेकर उनके साथ मानसिक एवं बौद्धिक विशेषणों का उपयोग किया जाना चाहिए।** तब अर्जुन में संपूर्ण कायरता अथवा नपुंसकता का दोष न होकर केवल आंशिक रूप में ही लगेगा। भगवान् श्रीकृष्ण ने भी संपूर्ण गीता में उसकी इसी भ्रमित अवस्था को, उसकी कश्मलता को दूर किया और अन्त में पूछा भी कि 'कच्चिदज्ञानसंमोह: प्रनष्टस्ते धनंजय'(18-72) अर्थात् उसको केवल मोह भर हुआ था, नपुंसकता नहीं।

सुधी एवं विद्वान गीता पाठक/साधक भी इस पर विचार करेंगे, इसी निवेदन के साथ भगवान् श्रीकृष्ण से प्रार्थना है कि वे हम सबके क्लैब्यं को सदैव दूर करते रहें।

(यहाँ शेष पृष्ठ 39 का)

शास्त्रीजी नित्य गीता पढ़ने लगे।

एक दिन सहसा उनका ध्यान तत्त्वज्ञान की ओर गया। उसके बोध से प्रेरणा पाकर वे आनन्द विभोर हो गये।

अब पछताए कि गीता भी क्या मात्र पढ़ने की वस्तु है। व्याख्या से भला क्या लाभ होगा? वह तो बुद्धि का प्रलाप है। तर्क का मायाजाल है।

महीनों बीत गये, फिर शास्त्रीजी राजा के पास नहीं गये। उन्होंने राजा के पास जाना आवश्यक नहीं समझा। वे वहाँ नहीं गये, यह जान कर राजा स्वयं उन्हें ढूंढते-ढूंढते उनके घर पहुँचे।

नरेश ने विनयपूर्वक कहा, शास्त्रीजी, मैं धन्य हो गया। **अब आप सचमुच गीतामय भक्त हो गये हैं। गीता आपके रक्त, मन, प्राण, और श्वास-प्रश्वास में समा गई है। मुझे अपने मुंह से गीता सुना कर कृतार्थ करें।** इस साधना के पश्चात् ही अब आपके मुख से गीता का तत्त्वज्ञान निकलेगा।

देवदत्त शास्त्री कहने लगे, श्रीमान् मैं बड़ी गलती पर था। आपने मुझे झूठे अहंकार से बचा लिया। मुझे अपने ज्ञान का गर्व हो गया था। **गीता कोई व्याख्या की पुस्तक है?** भारी गलती हुई। **गीता तो जीने और कर्म करने की संदेशवाहिनी संजीवनी है। जीवन की सक्रिया दिशा है। दैनिक जीवन में अपने प्रत्येक कार्य में उतारने की कामधेनु है। साक्षात् कर्म द्वारा संदेश देने वाला कल्पवृक्ष है। सुनने की नहीं, जीवन जीने की विद्या है। जिन्दगी को निश्चित दिशा देने की विद्या है। पढ़ने की नहीं, कर्म करने की कला है।**

नरेश ने उन्हें श्रद्धापूर्वक नमन किया। **श्रीकृष्ण कहते हैं, हे अर्जुन! निराश, हताश, परेशान मत होओ और घबराओ नहीं, उठो और संघर्ष करो। गीता कर्म की उपासना है। आत्म विश्वास और जीवन में उत्साह जाग्रत करने की प्रेरक है। गीता का यह संदेश शाश्वत है। सार्थक, सफल, यशस्वी जीवन जीने के लिए तथा प्रत्येक को कठिनाइयों से युद्ध करने के लिए धनुर्धारी अर्जुन बनना होगा।** ○○

समझो और ग्रहण करो

-पू. स्वामी श्री अखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज

❖ **देह में जो अहं भाव का परित्याग है, वही देह-त्याग है। मैं शरीर हूँ, मेरा शरीर है- इस भ्रान्ति का नाम ही शरीर ग्रहण है** और इस भ्रांति का परित्याग ही शरीर का त्याग है।

❖ कौशल माने यह है कि कर्म करो और कर्म की जड़ उखाड़ फेंको। न पाप लगे न पुण्य लगे। ऐसे कौशल से कर्म करो कि कर्म की जड़ वासना उखड़ जाये और वासना के साथ-साथ उसके मूल में जो अज्ञान है वह भी दूर हो जाये।

❖ मूढ़ के जीवन में प्रतिदिन हजार बार शोक आता है और हजार बार भय आता है लेकिन **'पण्डितं नाविशन्ति।' पण्डित को न शोक लगता है और न भय लगता है यही बुद्धियोग है।** गीता जीते जागते होश हवास में रहते हुए आदमी के लिए है। गीता बुद्धि को मारकर नहीं उसे रखकर अपना काम करती है।

❖ **संसार में जो दु:खी हैं वे बेवकूफ भी हैं। क्योंकि जहाँ ज्ञान है, वहाँ आनंद है, और जहाँ आनंद है वहीं ज्ञान है।**

❖ मिथ्याचारी कर्म नहीं करता है लेकिन विषयों का चिंतन करता है।

❖ तुम यज्ञ करना चाहते हो तो सुंगध फैलाने के लिए, मधुर रस की वर्षा करने के लिए, सौन्दर्य की सृष्टि करने के लिए, सुकुमारता का विस्तार करने के लिए कर्म करो। **यज्ञ न करना, अपने कर्त्तव्य कर्म की उपेक्षा करना, जिनसे लेते हैं उनको कुछ न देना-यह चोरी है, अपराध है। कर्म को बेमन से भी मत करो।**

❖ तत्त्वज्ञानी पुरुष केवल इच्छा ही नहीं अनिच्छा को भी छोड़ देता है। **इच्छा और अनिच्छा दोनों ही के रूप में काम ही रहता है।**

❖ **परिग्रह बाहर का नहीं होना चाहिए।** भीतर कामना नहीं होनी चाहिए और मनोराज्य भी नहीं होना चाहिए।

❖ मैं ज्ञानवृत्ति वाला हूँ-इसका अभिमान मत कीजिए। ज्ञानावस्थित होकर कर्म कीजिए।

❖ **ज्ञाने परिसमाप्यते-इसका अर्थ है कि साधन और साध्य दोनों का भेद मिट जाता है।** उसके बाद सुख नहीं, दु:ख नहीं, नरक नहीं, स्वर्ग नहीं, समाधि नहीं और विक्षेप नहीं।

❖ जब अज्ञान है तो श्रद्धा करनी ही पड़ेगी। तब काम बन जाएगा। अज्ञान को मिटाने के लिए विचार करो या ज्ञानियों की बात पर श्रद्धा करो। अन्यथा "विनश्यति" तुम्हारे भाग्य में विनाश ही लिखा है।

❖ जो शंकालु है वह अपनी ही शांति का नाश करता है।

❖ यदि बन्धु और धन दोनों को संक्षिप्त कर दो तो वह शब्द बनेगा 'बंधन'। ये दोनों बंधु और धन ही बंधन के हेतु हैं। इस तरह बन्धु और धन को जोड़ो तो 'बन्धन' और दोनों को छोड़ दो तो हो गया 'निर्बन्धन'।

❖ हम मोह कलिल में मोह के दलदल में फंसे हुए हैं। हमसे पांच रुपये तो छूट नहीं पाते हैं। इस दलदल से छूटने के लिए जो अब तक सुना है और जो आगे सुनना बाकी है उसको याद रखने की जरूरत नहीं है। जो प्रयोजन था वह पूरा हो गया। फिर सुने हुए को याद रखने की जरूरत नहीं है। वह तो बड़ा भारी बोझ है। आगे यह सुनना है, वह सुनना है, वह भी छोड़ो। ○○

गीता से

- श्री नलिनीकान्त

नहीं संन्यास,
बल्कि कर्मयोग ही
गीता–सारांश।

प्रतीक्षा पाप,
उठो स्वयं अपना
करो उत्थान।

प्रसन्नता ही
भगवान, होठों पै
धरो मुस्कान।

बघारो नहीं
ज्ञान, दे सको तो दो
भोजन दान।

मन चंचल,
होगा अभ्यास से ही
यह निश्चल।

कर्म करना
निज धर्म, बिसरो
फल का मर्म।

मत पूछो कि
गीता में क्या, कहो
कि नहीं है क्या?

–अंडाल, प. बंगाल–713329

ज्योतियों का भी ज्योति है परब्रह्म

-श्री ज्ञानेन्द्र कुमार पाण्डेय

श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने बतलाया है कि सच्चिदानन्दघन ब्रह्म की उपासना चेतन भाव को प्रधानता देकर ही संभव है। ब्रह्म अज्ञान रूप अन्धकार से परे सब का प्रकाशक और विज्ञानमय है। उसका स्वरूप परम चैतन्य एवं अखण्ड अनन्त ज्योतिर्मय है। ब्रह्म के इस स्वरूप के ध्यान में तन्मय होने से मनुष्य सांसारिकता से विमुक्त होकर परमात्मा को प्राप्त कर लेता है। गीता में इस स्वरूप की उपासना निम्नांकित श्लोक में वर्णित है (13-17)-

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम्।।

अर्थात् वह परब्रह्म ज्योतियों का भी ज्योति एवं माया से अत्यन्त परे कहा जाता है। वह परमात्मा बोधस्वरूप, जानने के योग्य एवं तत्वज्ञान से प्राप्त करने योग्य है और सबके हृदय में विशेष रूप से स्थित है।

चन्द्रमा, सूर्य, तारे आदि जितनी भी बाह्य ज्योतियाँ हैं; बुद्धि, मन और इन्द्रियाँ आदि जितनी आध्यात्मिक ज्योतियाँ हैं तथा **विभिन्न लोकों और वस्तुओं के अधिष्ठातृ देवता रूप जो देव ज्योतियाँ हैं उन सभी का प्रकाशक वह परमात्मा है। साथ ही, उन सब में जितनी प्रकाशन शक्ति है, वह भी उसी परब्रह्म परमात्मा का एक अंशमात्र है।** इसीलिए वह समस्त ज्योतियों का भी ज्योति अर्थात् सबको प्रकाश प्रदान करने वाला, सब का प्रकाशक है।

श्रुति में भी कहा गया है -

'न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति।।'

(कठोपनिषद् 2/2/15, श्वेताश्वतर उ. 6/14)

अर्थात् वहाँ न सूर्य प्रकाश करता है, न चन्द्रमा और न तारागण ही। न वहाँ यह बिजली प्रकाश करती है, फिर इस अग्नि की तो बात ही क्या है ? उसी के प्रकाशित होने से सब प्रकाशमान होते हैं और उसी के प्रकाश से यह समस्त जगत प्रकाशित होता है। गीता में भी कहा गया है (15-12) -

यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम्।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम् ।।

अर्थात् सूर्य में स्थित जो तेज सम्पूर्ण जगत् को प्रकाशित करता है तथा जो तेज चन्द्रमा में है और अग्नि में है उसको तू मेरा ही तेज जान।

सूर्यमण्डल में जो एक महान ज्योति है, वह समस्त जगत को प्रकाशित करती है। यह कह कर भगवान् ने यह भाव दिखलाया है कि स्थूल संसार की समस्त वस्तुओं को एक सूर्य का तेज ही प्रकाशित करता है। इसी प्रकार चन्द्रमा में जो ज्योत्सना है, उसका वाचक चन्द्रस्थ तेज है एवं अग्नि में जो प्रकाश है उसका वाचक अग्निस्थ तेज है। भगवान् ने सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि में स्थित समस्त तेज को अपना तेज बतलाकर यह भाव दिखलाया कि उन तीनों में और वे जिनके देवता हैं– ऐसे नेत्र, मन और वाणी में वस्तु को प्रकाशित करने की जो कुछ भी शक्ति है–वह उनके ही तेज का एक अंश है।

यह ज्ञाननिष्ठा का विषय है जिसके तत्व को हमें तत्वदर्शी महात्माओं से सम्यक् रूपेण जानना चाहिए और अज्ञान जनित देहात्मबुद्धि को हटा कर नित्य विज्ञानानन्दघन परमात्मा के स्वरूप में एकीभाव से स्थित हो जाना चाहिए और **अपने अनन्त चेतन आत्मस्वरूप के अन्तर्गत सारे चराचर भूत प्राणियों को एक अंश में स्थित समझना चाहिए। इस प्रकार का अभ्यास करने से मनुष्य सच्चिदानन्दघन परमात्मा को अभेद रूप से प्राप्त कर लेता है।** गीता में इसी आशय का निम्नलिखित श्लोक है (4–34)–

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः।।

'उस ज्ञान को तू तत्वदर्शी ज्ञानियों के पास जा कर समझ, उनको भलीभांति दण्डवत प्रणाम करने से, उनकी सेवा करने से और कपट छोड़कर सरलतापूर्वक प्रश्न करने से वे परमात्मतत्व को भली भाँति जानने वाले ज्ञानी महात्मा तुझे उस तत्वज्ञान का उपदेश करेंगे।'

फिर अगले श्लोक में कहा है कि जिसको जानकर पुनः तू इस प्रकार मोह को नहीं प्राप्त होगा तथा हे अर्जुन ! जिस ज्ञान के द्वारा तू सम्पूर्ण भूतों को निःशेषभाव से पहले अपने में और पीछे मुझ सच्चिदानन्दघन परमात्मा में देखेगा।

ब्रह्म की उपासना जड़ पदार्थों का अभाव करके साक्षी और द्रष्टा के रूप में चेतन को प्रधानता देकर भी होती है। यह संसार क्षण– भंगुर, अनित्य एवं जड़ है। इससे इन्द्रियों को हटाकर अहंता, कामना और आसक्ति का त्याग कर बुद्धि से निःसंकल्पता का अभ्यास करना चाहिए जिससे अंत में केवल चेतन पुरुष ही बच रहता है। वही ब्रह्म है।

श्वेताश्वतरोपनिषद् के अनुसार जो परम पुरुष परमेश्वर समस्त इन्द्रियों से रहित होने पर भी सभी इन्द्रियों के विषयों को जानने वाला है तथा सबका स्वामी, सब का शासक और सबसे बड़ा आश्रय है, उसकी शरण जाना चाहिए। (3/17)

परमात्मा की शरण में पूर्णत: गए हुए मनुष्य की स्थिति एक सामान्य व्यक्ति से सर्वथा भिन्न होती है जिसके संबंध में भगवान् श्रीकृष्ण ने स्वयं गीता में इस प्रकार कहा है- (18-54,55) -

'फिर वह सच्चिदानन्दघन ब्रह्म में एकीभाव से स्थित, प्रसन्न मन वाला योगी न तो किसी के लिए शोक करता है और न किसी वस्तु की आकांक्षा ही करता है। ऐसा समस्त प्राणियों में समभाव वाला योगी ज्ञानयोग की परानिष्ठारूप मेरी पराभक्ति को प्राप्त कर लेता है। उस पराभक्ति के द्वारा वह मुझ परमात्मा को, मैं जो हूँ और जितना हूँ, ठीक वैसा का वैसा तत्व से जान लेता है तथा उस भक्ति से मुझको तत्व से जानकर तत्काल ही मुझमें प्रविष्ट हो जाता है।'

इस दुर्लभ मानव देह को प्राप्त करने के उपरान्त प्रत्येक मनुष्य का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वह तत्परतापूर्वक परमात्मा की प्राप्ति के लिए सच्चे (सात्विक) मन से सच्ची कर्त्तव्यपरायणता के साथ प्रयत्नशील हो।

मन का दीया जलाओ

- श्री पुष्करलाल जी केडिया, कोलकाता

एक बार एक भक्त से विनोबा भावे ने पूछा-"तुम इतनी श्रद्धा से हनुमान जी की पूजा करते हो, दीया जलाते हो। क्या तुम्हें कुछ चाहिए ?" वह बोला-"मुझे जो चाहिए था वह मिल गया है, अतः नित्य दीया जलाकर अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।"

विनोबा ने पूरी बात जाननी चाही। वह बोला कि मैंने एक गरीब आदमी की जमीन पर अवैध कब्जा कर लिया था और मैंने ही उस पर मुकदमा कर दिया। वह गरीब आदमी मुकदमा हार गया, यही मैंने हनुमानजी से मांगा था।

विनोबा को पूरी बात सुनकर बड़ा दुःख हुआ। वे बोले-मेरे भाई, यदि तुम वास्तविक शांति चाहते हो तो मन का दीया जलाओ। उस आदमी की जमीन वापस कर दो, वरना तुम्हारे मन में अंधेरा ही रहेगा। उस आदमी ने झूठ के सहारे जीती हुई जमीन लौटा दी। ○○

हाइकु

- श्री सुभाष नागर 'भारती'

पत्थर तिरे
नाम के प्रभाव से
अथाह शक्ति

मृग-तृष्णा सी
लगी है चहुं ओर
कितनी प्यास

कहाँ तक है
तेरी विस्तार सीमा
असीम है तू

छूटेगा यह
नश्वर संसार भी
आ....'राम' कर

दीनदयाल
घट-घट के वासी
हैं अविनाशी

पी ले अमृत
भक्ति का रस ले रे
श्रीकृष्ण हरे

सदा से ही हूँ
मैं अज्ञ, तू सर्वज्ञ
इस जग में

तहसील के पास, गांधी चौक, अकलेरा-326033

प्रेम-बात कछु कही न जाई।
उलटी चाल तहाँ सब भाई।।
प्रेम-बात सुनि बौरा होई।
तहाँ सयान रहै नहिं कोई।।
तन मन प्रान तिही छिन हारै।
भली-बुरी कछुवै न विचारै।।
ऐसो प्रेम उपजि है जबहीं।
'हित ध्रुव' बात बनैगी तबहीं।।
प्रेम की छटा बहुत बिधि आही।
समुझि लई जिन जैसी चाही।।

-ध्रुवदास

OO

दुर्भाग्यपूर्ण है गीता ज्ञान का विस्मरण

- डॉ. दीनदयाल ओझा

मत, बहुमत, पद, धन और सांसारिक सुखों में आसक्त भारत वर्तमान में सर्वांगीण रूप से गीता का ज्ञान भुलाता जा रहा है। यह हमारी दयनीय मानसिकता को दर्शाता है। जिस गीता के ज्ञान को विश्व स्वीकारता है, उस गीता के गहन एवं जीवनोपयोगी ज्ञान को भारत का प्रत्येक पदधारक न केवल भुला रहा है, अपितु ऐसे कुत्सित प्रयास भी करता रहा है कि उस महत् ज्ञान की ओर कोई ध्यान ही न दे।

गीता में भगवान् ने कहा है कि जैसे संपूर्ण नदियों का जल चारों ओर से जल द्वारा परिपूर्ण समुद्र में आकर मिलता है, पर समुद्र अपनी मर्यादा में अचल स्थित रहता है, **ऐसे ही संपूर्ण भोग-पदार्थ जिस संयमी मनुष्य में विकार उत्पन्न किये बिना ही समा जाते हैं, वही मनुष्य परमशांति को प्राप्त होता है, भोगों की कामना वाला नहीं (2-70) -**

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत्।
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे स शान्तिमाप्नोति न कामकामी।।

आज भारत के अधिकांश निवासी काम-कामी हैं, अतः अशान्त हैं, उद्विग्न हैं। उनका भाव जगत अधिकांश रूप में गीता की दृष्टि से कहीं रजोगुणी और कहीं तमोगुणी हो गया है। **मानवी प्रवृत्तियां जब लोभ, लालच, विषयभोग में आसक्त हो जाती हैं तब वे तमोगुणी और दानवी बन जाती हैं।** इसी तरह गीता में कहा गया है कि काम, क्रोध तथा लोभ-ये तीन प्रकार के नरक के द्वार आत्मा का नाश करनेवाले हैं। मानव मात्र को अधोगति में ले जाने वाले हैं। अतएव इन तीनों को त्याग देना चाहिए (16-21) -

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्।।

आज भारत का शिखरस्थ प्रज्ञापुत्र मत, बहुमत, पद-धन और विषय भोगों तथा चुनावी जोड़-तोड़ की उठापटक में पूर्णरूपेण निमग्न दिख रहा है। गीता के अध्याय दो के श्लोक 62 व 63 में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि **विषयों का चिंतन करनेवाले पुरुष की उन विषयों में आसक्ति हो जाती है। आसक्ति से उन विषयों की कामना उत्पन्न होती है और कामना में विघ्न पड़ने से क्रोध उत्पन्न होता है। क्रोध से अत्यन्त मूढ़ भाव उत्पन्न होता है। मूढ़ भाव से स्मृति में भ्रम हो जाता है, स्मृति में**

भ्रम हो जाने से बुद्धि अर्थात् ज्ञान शक्ति का नाश हो जाता है और बुद्धि का नाश हो जाने से यह पुरुष अपनी स्थिति से गिर जाता है।

ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते।
संगात्सञ्जायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते।।
क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति।।

गीता के अनुसार आचरण, नित्य चिंतन-मनन करने के कारण ही रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद, विनोबा भावे, लालबहादुर शास्त्री आदि महामना आसुरी प्रवृत्तियों से छुटकारा पा दैवी गुणों या प्रवृत्तियों को धारण करके ही राष्ट्र हितार्थ निरंतर काम किया करते थे। भारत के कर्णधारों तथा सामान्य जन के लिए जरूरी है कि इस संक्रांति बेला में गीता को भूलें नहीं, अपितु पूर्ण मनोयोग से मनन कर जीवन में उतारें।

गीता ज्ञान से हमारा जीवन दिव्य हो जाएगा और हम अपने परम-चरम लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल हो सकेंगे।

साहित्य साधना सदन, केला पाड़ा, जैसलमेर-345001

राबिया

- पूज्य स्वामी श्री कूटस्थानंदजी

एक बार राबिया के गुरु हुसैन राबिया के पास गए। उन्होंने देखा कि राबिया ने कुरान शरीफ में एक लाइन काटी हुई है। उन्होंने आश्चर्यपूर्वक राबिया से पूछा कि यह तो धार्मिक पुस्तक है। यह तो परमात्मा की वाणी है। इस पर किसने कलम चलाई। राबिया रोने लगी। बोली-यह लाइन मैंने काटी है।

हुसैन ने कहा, तूने काटी ? मगर क्यों ? उसने कहा कि इसमें लिखा हुआ है कि तुम भगवान् से प्रेम करो, शैतान से घृणा करो। मेरे पास प्रेम ही प्रेम है, घृणा है ही नहीं। हुसैन ने राबिया को प्रणाम किया। कहा- 'तुम्हारी ऊँचाई बहुत अधिक है राबिया। यह स्थितप्रज्ञ का लक्षण है। स्थितप्रज्ञ में प्रेम ही प्रेम होता है। प्रेम के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता।' ○○

कृष्ण जैसा चित्त चाहिये

-ओशो

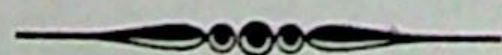
गीता को जानना हो तो कृष्ण जैसा चित्त चाहिए। अर्जुन भी हो गए तो भी न जान पाओगे। अर्जुन कितना विवाद कर रहा है कृष्ण से, नहीं समझ पा रहा है। अर्जुन इतना निकट है, इतना मित्र, संगी-साथी है बचपन का। एक-दूसरे के साथ खेले हैं। एक-दूसरे के साथ मिले-जुले हैं, मैत्री है, मगर फिर भी अर्जुन नहीं समझ पा रहा है। कृष्ण कुछ कहते हैं, अर्जुन कुछ पूछे चला जाता है।

तुम कैसे समझोगे ? तुम तो इतने दूर हो। हजारों साल का फासला है तुम्हारे और कृष्ण के बीच-भाषा का, भाव का, विचार का, संस्कार का, संस्कृति का, इतना लंबा फासला....। अर्जुन नहीं समझ पा रहा है, तुम कैसे समझ पाओगे ? नहीं, तुम कुछ का कुछ समझ लोगे।

कृष्ण-चेतना तुम्हारे भीतर पैदा हो तो ही तुम गीता को समझ पाओगे। परमात्मा किसी पर विशेष कृपा नहीं करता, उसकी अनुकम्पा समान है। सब पर एक जैसी बरस रही है। जो खाली हैं, वे भर जाते हैं, जो भरे हैं, खाली रह जाते हैं। वर्षा होती है पहाड़ों पर भी लेकिन पहाड़ खाली रह जाते हैं, क्योंकि वे भरे हैं। झीलों पर भी वर्षा होती है लेकिन झीलें भर जाती हैं, क्योंकि वे खाली हैं।

पहले शून्य हो जाओ तो भर जाओगे। तुम पहाड़ बने बैठे हो-ज्ञान के पहाड़। इसीलिए तुम अज्ञानी हो। हटाओ इन पहाड़ों को। इन पहाड़ों की ओट में अपने अज्ञान को मत छिपाओ। अपने अज्ञान को निर्वस्त्र करो। खोल दो उसके सामने अपने सारे घावों को। खाली हो तो खाली सही, जैसे भी हो उसके हो। सूने हो, शून्य हो, शून्य सही, जैसे भी हो उसके हो। अपने शून्य पात्र को उसके सामने कर दो और तुम तत्क्षण भर जाओगे उसकी रोशनी से और वही रोशनी प्रमाण बन जाएगी सारे शास्त्रों की। उसी रोशनी में तुम्हारे भीतर शास्त्र का जन्म शुरू हो जाएगा।

शास्त्र तो रोज पैदा होते हैं। जब भी कोई ध्यान को उपलब्ध होता है तभी शास्त्र पैदा हो जाते हैं। जैसे गंगोत्री से गंगा निकलती है, ऐसे ही समाधि से शास्त्र निकलते हैं।



मानव में अशांति का मुख्य कारण है विवेक का अभाव। विवेक वह सर्वोत्तम संपत्ति है जिसके प्राप्त होने पर अभाव व्यक्ति को पीड़ित नहीं कर सकते। -सत्यमित्रानंदगिरिजी

गीता में विज्ञान

- प्रोफेसर राज. कुमार गुप्ता

गीता के संदेश, विज्ञान के सिद्धांतों के निचोड़ हैं। जैसे-जैसे विज्ञान प्रगति करता जा रहा है, गीता के संदेशों का महत्व बढ़ता जा रहा है। **गीता में निहित ज्ञान, विज्ञान के ऐसे मूल सिद्धांतों पर आधारित है जो विश्व के समस्त धर्मावलम्बियों पर समान रूप से लागू होते हैं। इस लेख में गीता के कुछ ऐसे ही श्लोकों पर ध्यान केन्द्रित किया गया है।**

गीता पर अब तक कई प्रसिद्ध राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय विद्वानों द्वारा विभिन्न भाषाओं में हजारों टीकाएँ लिखी जा चुकी हैं। विज्ञान में उस समय तक हुई अपर्याप्त उन्नति के कारण इन टीकाओं में अध्यात्म को वैज्ञानिक आधार देने में कम सफलता मिली है। **पिछले 30 वर्षों में वैज्ञानिकों ने जो नवीनतम सिद्धान्त प्रतिपादित किए हैं और अनूठे उपकरण विकसित किए हैं, उनके प्रयोग से गीता में निहित गहन वैज्ञानिक ज्ञान का परिचय मिलता है।** अब गीता के अध्यात्म को पूर्ण वैज्ञानिक आधार देना संभव हो गया है। गीता में ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति और मानव व्यवहार का जैसा सटीक विवेचन दिया गया है, आधुनिक वैज्ञानिक उस दिशा की ओर अब बढ़ रहे हैं। यद्यपि गीता में ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति की समय सारणी नहीं दी गई है, परन्तु जिस प्रक्रिया से विश्व का सृजन हुआ है, उसका पूर्ण एवं विलक्षण विवरण दिया गया है। इसमें बताए गए उपाय अपनाने से व्यक्ति स्वयं के तथा समाज के व्यवहार में सकारात्मक परिवर्तन ला सकता है।

1. ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति :

आधुनिक विज्ञान के स्ट्रींग व अन्य सिद्धांतों के अनुसार **ब्रह्माण्ड की प्रत्येक वस्तु विभिन्न गुणों के सूक्ष्म कम्पनों के संयोग से बनी है।** वैज्ञानिकों ने हब्बल टेलीस्कोप व अन्य विकसित उपकरणों के माध्यम से यह निष्कर्ष निकाला है कि 13.7 अरब वर्ष पूर्व एक विशाल विस्फोट हुआ। उसके पश्चात् कई अन्य विस्फोट हुए। इन विस्फोटों के फलस्वरूप कई प्रकार के विभिन्न गुणों वाले कम्पन उत्पन्न हुए। **इन कम्पनों के संयोग से इलेक्ट्रोन, प्रोटोन, परमाणु व अणु आदि की संरचना हुई। इन इलेक्ट्रोन, प्रोटोन व न्यूट्रान आदि के विभिन्न सामंजस्यों से समस्त निर्जीव**

व सजीव पदार्थों का सृजन हुआ। उदाहरण के रूप में, हाइड्रोजन के दो अणु और आक्सीजन के एक अणु के संयोग से पानी (H_2O) बनता है। हाइड्रोजन व आक्सीजन भी विभिन्न इलेक्ट्रोन व प्रोटोन के संयोग से बनी हैं, जबकि इलेक्ट्रोन व प्रोटोन स्वयं भी विभिन्न गुणों वाले कम्पनों से सृजित हुए हैं। इसी प्रकार विश्व की समस्त वस्तुओं का निर्माण हुआ है। **अभी तक वैज्ञानिक इस प्रश्न का उत्तर देने में असमर्थ हैं कि विस्फोट क्यों हुए और किसने किए ?**

गीता में यह स्पष्ट रूप से बताया गया है कि **ब्रह्माण्ड की प्रत्येक वस्तु एक परम शक्ति के संकल्प से उत्पन्न हुई है (10-6)-**

महर्षयः सप्त पूर्वे चत्वारो मनवस्तथा।
मद्भावा मानसा जाता येषां लोक इमाः प्रजाः ।।

विश्व के समस्त चर व अचर जीव, परा व अपरा श्रेणी के कम्पनों के मिश्रण से पैदा हुए हैं (7-4, 5, 6)।

वैज्ञानिक अब यह मानने लगे हैं कि इस ब्रह्माण्ड का आदि व अंत ज्ञात नहीं किया जा सकता और यह सब ओर फैलता जा रहा है। गीता में इस तथ्य को स्पष्ट रूप से कहा गया है (15-3)।

वैज्ञानिकों ने **सबसे सूक्ष्म कम्पनों की तरंग लम्बाई 10^{-35} मीटर आंकी है। गीता में ब्रह्माण्ड में उत्पन्न सबसे सूक्ष्म व शक्तिशाली कम्पन आत्मा के बताए गए हैं।** ये कम्पन सब वस्तुओं के पार निकल सकते हैं (3-42)-

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः ।।

इन सूक्ष्मतम कम्पनों का विघटन किसी भी शस्त्र आदि से नहीं हो सकता। यह पूर्ण रूप से वैज्ञानिक तथ्य है (2-23)-

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ।।

गीता में और भी कई श्लोक दिए गए हैं जिनसे ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति व इसके संचालन का सटीक व तार्किक विवरण ज्ञात होता है।

2. मानव व्यवहार का विश्लेषण :

ब्रह्माण्ड के सृजन के समय उत्पन्न हुए कम्पनों में सत्त्व, रजस व तमस गुणों के कम्पनों की श्रेणी अत्यंत महत्वपूर्ण होती है (14-5)।

सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसम्भवाः।
निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम्।।

आधुनिक जीव वैज्ञानिकों ने यह प्रमाणित किया है कि मानव मस्तिष्क में लगभग एक हजार करोड़ न्यूरोन होते हैं। एक विशेष रासायनिक विधि के कारण ये न्यूरोन निरन्तर विभिन्न गुणों के कम्पन उत्पन्न करते रहते हैं और आसपास फैले अदृश्य भौतिक व पराभौतिक ऊर्जा के कम्पनों को ग्रहण भी करते हैं। इसी कारण व्यक्ति का मस्तिष्क हमेशा कार्यरत रहता है।

गीता में यह स्पष्ट रूप से बताया गया है कि **व्यक्ति कभी क्षण मात्र भी बिना कार्य किए नहीं रहता। प्रकृति में उत्पन्न सत्त्व, रजस व तमस प्रवृत्ति के कम्पन मानव मस्तिष्क में सृजित कम्पनों से संयोग करते हैं और परिणामस्वरूप व्यक्ति प्रकृति के वश में होकर कार्य करने को विवश हो जाता है (3-5)-**

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः।।

त्रिगुणमय कम्पनों के मानव मस्तिष्क द्वारा उत्पन्न कम्पनों के संयोग से काम, क्रोध, लोभ, मद आदि विकारों का जन्म होता है (13-19)-

प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि।
विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसम्भवान्।।

गीता के संदेशों का वैज्ञानिक आधार उन कम्पनों के संयोग का परिणाम है जो कम्पन मानव मस्तिष्क उत्पन्न करता है और ये प्रकृति में व्याप्त कम्पनों से संसर्ग करते हैं। ये दोनों प्रकार के कम्पन सभी धर्मों से परे होते हैं। अतः गीता के ज्ञान का उपयोग विश्व के सभी धर्मावलम्बी समान रूप से कर सकते हैं।

अब यह वैज्ञानिक रूप से प्रमाणित हो गया है कि **मानव मस्तिष्क द्वारा उत्पन्न कम्पनों के गुण और मानव व्यवहार व्यक्ति के भोजन पर भी निर्भर करते हैं। इसीलिए भोजन में परिवर्तन कर मानव व्यवहार के विकार कम या अधिक किए जा सकते हैं। इसीलिए गीता में सुख, स्वास्थ्य, बुद्धि एवं प्रेम बढ़ाने के लिए सात्त्विक भोजन करने की अनुशंसा की गई है जो पूर्णतया वैज्ञानिक है (17-8)-**

आयुःसत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः ।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः ।।

3. पुनर्जन्म एवं मोक्ष का वैज्ञानिक पक्ष :

आधुनिक विज्ञान के अनुसार ब्रह्माण्ड की प्रत्येक वस्तु किसी शक्ति द्वारा उत्पन्न कम्पनों से सृजित हुई है। अतएव आत्मा भी कम्पनों का एक पुंज है। अपरा प्रकृति के कम्पनों से निर्जीव वस्तुओं का और परा तथा अपरा प्रकृति के कम्पनों के संयोग से सजीव पदार्थों का सृजन हुआ है (7-4, 5, 6)। सजीव शरीर की आयु समाप्त होने पर उसकी चेतन शक्ति/ जीवात्मा के कम्पन उस शरीर से निकल जाते हैं। ये सब दिशाओं में गमन करने में समर्थ होते हैं और उपयुक्त समान गुणों के कम्पनों का स्रोत प्राप्त होने पर उसमें समाहित होकर उस स्रोत के शरीर में जन्म लेते हैं। एक शरीर को छोड़ने के पश्चात् उसकी जीवात्मा दूसरे शरीर में कब प्रविष्ट होती है, यह विषय अत्यंत जटिल है। यह समयान्तर पृथक्-पृथक् स्थितियों पर निर्भर करता है और गूढ़ अध्ययन का विषय है (15-8) -

शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः ।
गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धानिवाशयात् ।।

शरीर से निकली जीवात्मा के कम्पन जब सब विकारों से मुक्त होते हैं, तब इन कम्पनों के गुण ईश्वरीय कम्पनों के गुणों के बिल्कुल समान हो जाते हैं और विज्ञान के लयबद्धता के सिद्धान्त के अनुसार दोनों कम्पन पूर्ण रूप से मिल जाते हैं (15-5) -

निर्मानमोहा जितसंगदोषा अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः ।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञैर्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत् ।।

यद्यपि ऐसी स्थिति आना अत्यंत कठिन होती है, परन्तु ऐसा होने पर जीवात्मा पुनर्जन्म से मुक्ति पा जाती है। ऐसी स्थिति को मोक्ष कहते हैं ।

4. आधुनिक युग में गीता का महत्व :

सृष्टि की उत्पत्ति से लेकर मानव व्यवहार का पूर्ण वैज्ञानिक चित्रण गीता के अध्ययन से ज्ञात होता है। पुनर्जन्म के तथ्य को मानने से व्यक्ति में ईर्ष्या, द्वेष, अहंकार आदि स्वाभाविक रूप से कम होते जाते हैं। गीता में दिए गए संदेशों को अपनाकर मानव शांति, सुख, स्वास्थ्य व संतोष का अनुभव कर सकता है। इससे समाज में भी सकारात्मक परिवर्तन आयेगा और व्यक्ति की जीवात्मा अपनी अगली यात्रा में उन्नत अवस्था में जाने को उद्यत हो जायेगी। ○○



स्वाध्याय

-पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकरजी

'स्व+अध्याय', अपनी सत्ता का अध्ययन, आत्मा का ज्ञान प्राप्त करना, सद्विद्याध्ययन, सत्य विद्या का अभ्यास, आत्मा, परमात्मा, ब्रह्म, परब्रह्म इनका सत्य स्वरूप जानने के लिए अध्ययन करने का नाम है। **अपने शरीर, इन्द्रिय-मन-बुद्धि-आत्मा का ज्ञान प्राप्त करना, आत्मनिरीक्षण करना और अपने अंदर जो दोष हों उनको दूर करना और सद्गुणों का संवर्धन करना भी स्वाध्याय ही है।**

वस्तुतः 'स्व' अथवा 'आत्मा' का स्वरूप 'विश्व' ही है। अध्याय 11 में 'विश्वरूप' बताया है, वह आत्मा का ही रूप है, वही सच्चा 'स्व' है। **इस विश्वरूप का सत्य ज्ञान प्राप्त करने का नाम स्वाध्याय है। अतः इसमें सब भौतिक और अभौतिक विद्याओं का समावेश होता है, कोई सत्य विद्या इससे बाहर नहीं रहती। जो भी कुछ मानवीय हित के लिए ज्ञेय है, उस सबका इस स्वाध्याय में अंतर्भाव होता है।**

स्वाध्याय से प्राप्त होने वाला यह ज्ञान व्यक्ति में रहता है, अतः यह वैयक्तिक गुण है। **राष्ट्र में अनेक व्यक्ति सत्य ज्ञान युक्त हों तो वह राष्ट्र अथवा वह समाज या जाति ज्ञान संपन्न है, ऐसा कहा जाता है।** यद्यपि ज्ञान हर व्यक्ति में रहता है, इसमें संदेह नहीं।

स्वाध्याय करना व्यक्ति के प्रयासों पर अवलंबित है, तथापि जिस राष्ट्र में ज्ञान प्रसार के केन्द्र अधिक होंगे, वहाँ का वायुमंडल ज्ञानग्रहण करने के लिए अनुकूल होगा। जहाँ ज्ञान प्रसार के केन्द्रों की न्यूनता और ज्ञानियों की संख्या कम होगी, वहाँ का वायुमण्डल ज्ञान ग्रहण के लिए प्रतिकूल होगा। इसी कारण मनुष्य में पर्याप्त बुद्धि रहने पर भी कई व्यक्तियों को ज्ञान प्राप्त नहीं होता। जैसे अफ्रीका के नीग्रो आदि बुद्धिमान भी हों तो उनको सत्यज्ञान प्राप्त करने की संभावना कम होने से ये लोग पीछे रह जाते हैं।

इस प्रकार 'स्वाध्याय' सर्वथा वैयक्तिक होने पर भी ज्ञानप्रसार-सुलभता की दृष्टि से सार्वजनिक भी है। इसलिए **हर एक व्यक्ति का स्वकर्तव्य स्वाध्याय करना होने पर भी अपने देश में ज्ञानग्रहण-सुलभता के केन्द्र अधिक से अधिक बनाने का यत्न भी करना चाहिए।** ○○

चुनौती को स्वीकार करना जीवित होने का प्रमाण है।

जीव ईश्वर-तत्त्व की ओर कैसे अग्रसर हो?

- श्री हरिकिशन झँवर

भगवान् श्रीराम, भाई लक्ष्मण व पत्नी सीता के साथ दंडक वन में निवास कर रहे थे। गौ, ब्राह्मण एवं संतों की रक्षा हेतु तथा दुष्ट राक्षसों के दलन हेतु भगवान् श्रीराम का अवतार हुआ था। वन-भ्रमण के दौरान अनेक ऋषि-मुनियों से श्रीरामजी की भेंट होती थी। सत्संग, भजन तथा आध्यात्मिक विषयों पर चर्चा भी हुआ करती थी। भगवान् राम से वार्तालाप करने में सभी को अति आनंद की अनुभूति होती थी। एक बार अनुज लक्ष्मण के मन में इच्छा हुई कि भ्राता श्रीरामजी के श्रीमुख से ज्ञान का उपदेश सुनें। भगवान् राम ने लक्ष्मण द्वारा विनम्रतापूर्वक पूछे गये प्रश्नों का स्नेहपूर्वक उत्तर देकर अनुज की जिज्ञासाओं का समाधान किया। यह प्रसंग रामायण के अरण्यकाण्ड का है। लक्ष्मण पूछ रहे हैं-

ज्ञान, ध्यान, बैराग की व्याख्या,
समझाकर के कहो प्रभु।
सेवा में आपकी रहूँ सदा,
ऐसो उपाय बतलाओ प्रभु ।।

ईश्वर जीव में भेद किसो,
ओ रहस्य भी बतलाओ प्रभु।
चरणाँ में आपके प्रीति बढ़े,
इसी जुगती बतलाओ प्रभु ।।

मुक्ति, बन्धन, मोह-माया को,
स्वरूप समझाओ भगवन्।
जीव ब्रह्म सूं मिलणे की,
कोई सरल विधि कहियो भगवन् ।।

लक्ष्मण जी सरल भाव से प्रभु से प्रार्थना करते हैं, हे प्रभु ! मुझे ज्ञान, ध्यान, वैराग्य की व्याख्या समझाकर कहिये। साथ ही मैं आपकी सेवा में सदा तत्पर रहूँ,

ऐसा उपाय बतलाइये। हे प्रभु ! ईश्वर व जीव में क्या भेद है, इसका खुलासा कीजिए। आपके चरणों में सदा मेरी प्रीति बनी रहे, ऐसी युक्ति समझा कर कहिये। हे भगवन् ! मुक्ति, बन्धन और मोह, माया का स्वरूप भी समझाइये। हे प्रभु ! जीव और ब्रह्म का मिलन किस प्रकार हो इसकी विधि बतलाइये।

अनुज लक्ष्मण की जिज्ञासाओं का समाधान करते हुए प्रभु बोले–

प्रभु बोल्या हे अनुज लखण, आ पंचतत्व की काया ह।
जो दीख रयो वो सपनो ह, भ्रम और अज्ञान की छाया ह।।
जो नहीं दीखे वो साचो ह, जिण ने ही ईश्वर केवे ह।
माया सूं ज्ञान ढकरियो ह, जो जीव समझ नहीं पावे ह।।
'म्हें मेरो' और 'तूं तेरो', आ ही तो जग की माया ह।
मोह जाल में जीव फंस्यो ह, लोग सभी भरमाया ह।
विषयां को चिन्तन होतां ही, मन बन्धन में बंध जावे ह ।
जो झूठो ह साचो दीखे, और सत्य निजर नहीं आवे ह।।
विषयां में मन को रम जाणो, बन्धन ह और अज्ञान भी ह।
विषयां सूं मन को हट जाणो, मुक्ति भी ह और ज्ञान भी ह ।।

रामजी बोले–हे भाई लक्ष्मण ! मनुष्य की देह पंचतत्त्वों से बनी है। ये प्रकृति के तत्त्व मरणोपरांत प्रकृति में ही समाहित हो जाते हैं, अदृश्य हो जाते हैं। इस प्रकार यह दृश्य जगत स्वप्न की भांति है। जो दिखता है वह स्वप्न है। जीव भ्रमित है। उस पर अज्ञान की छाया है। ईश्वर तत्त्व जो दिखता नहीं है, वही सत्य है। माया से ज्ञान ढका हुआ है। विषयों का चिन्तन होते ही जीव कर्म बन्धन में बंध जाता है। जो झूठ है, वह सत्य नजर आने लगता है। **अज्ञानवश विषयों में मन को लगाये रखना ही बन्धन है। विषयों से मन को हटा लेना ही मुक्ति का द्वार है, ज्ञान का उदय है।** 'मैं मेरा' और 'तू तेरा' का राग जो जगत में चारों तरफ सुनाई पड़ता है यही माया का स्वरूप है। **ज्ञान के उदय होने पर यह भ्रम की स्थिति मिट जाती है तथा जीव ईश्वर तत्त्व की ओर अग्रसर होने लगता है।**

14.2.332/19, ज्ञानबाग कॉलोनी, हैदराबाद–12

पर हित सरिस धर्म नहिं भाई

-श्री जगदीशचंद्र मेहता

एक बार मैं श्मशान यात्रा में था। वहाँ देखा कि सर्वधर्मग्रंथ श्रीगीता पर मानव खोपड़ी (मस्तिष्क) रखी हुई थी। उस पर गिद्ध पक्षी जटायु बैठा हुआ था। वहां पर दिव्य प्रकाश देखा गया। आत्मचिंतन-आत्मप्रकाश हुआ। चंचल मन में विचार और यह भावना जागृत हुई कि पक्षी और मानव मस्तिष्क अपने-अपने कर्मों की गति की कहानी कह रहे हैं। मनुष्य पक्षी से कहता है कि -

बड़े भाग मानुष तनु पावा।
सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा।।

अर्थात् बड़े भाग्य से यह मनुष्य शरीर मिला है। सब ग्रंथों में यही कहा गया है कि यह शरीर देवताओं को भी बड़ा दुर्लभ है। अब **मनुष्य के स्वयं के हाथों में है कि वह इस शरीर का कितना सदुपयोग या दुरुपयोग करता है। संसार में सब कुछ प्राप्त किया जा सकता है परन्तु प्रभु की असीम कृपा का दिया हुआ मानव शरीर पाना बड़ा ही कठिन है।**

पक्षी मानव से कहता है **"ईस्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी।।"** अर्थात् जीव ईश्वर का अंश है। वह अविनाशी चेतन, निर्मल और स्वभाव से ही सुख की राशि है, परन्तु भोग के कारण तोते और वानर की भांति बंध जाता है क्योंकि वह त्रिगुणमयी प्रकृति का शिकार हो जाता है।

श्री गीता ग्रंथ से भगवान् श्रीकृष्ण के स्वर गुञ्जरित होते हैं (15-7)-

"ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।" अर्थात् इस देह में यह सनातन जीवात्मा मेरा ही अंश है। अब व्यक्ति को विचार, मनन व चिन्तन करना चाहिए कि **जब जीव परमात्मा का अंश है तो उसे परमात्मा जैसा ही कार्य करना चाहिए। परमात्मा हमें सर्वदा अन्धकार से प्रकाश, अज्ञान से ज्ञान, असत्य से सत्य, मृत्यु से अमृत की ओर ले जाते हैं।** अतएव हमें धृतराष्ट्र नहीं, युधिष्ठिर बनना है ; रावण नहीं, श्रीराम बनना है। इसलिए गीता में भगवान् डंके की चोट कहते हैं, शंखनाद करते हैं कि सम्पूर्ण धर्मों यानी कर्तव्य कर्मों को मुझमें त्यागकर तू केवल एक मुझ सर्वशक्तिमान सर्वाधार परमेश्वर की शरण में आ जा। मैं तुझे सम्पूर्ण पापों से मुक्त कर दूंगा। तू शोक मत कर (18-66)-

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।।

पक्षी और मनुष्य दोनों ही अपनी-अपनी अन्तर्दृष्टि से जीवन के लौकिक व यथार्थ ज्ञान के कर्मों द्वारा जीव मात्र का कल्याण ही कल्याण देखते हैं। वे विचार करते हैं कि मानव ही ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ कृति, वरदान और धरोहर है।

पक्षी मानव की खोपड़ी पर बैठकर सुसंग से दैवी सम्पदा (16-1 से 3) के ज्ञान को प्राप्त करता है। पक्षी कहता है कि उसकी दृष्टि बड़ी पैनी है। वह आकाश में अनन्त ऊँचाइयों तक उड़ता है पर उसकी दृष्टि पृथ्वी पर मरे हुए व सड़े-गले जीवों के मांस पर ही बनी रहती है क्योंकि वह भोगयोनि का जीव है। वह सर्वदा आहार, निद्रा, भय और काम में ही लगा रहता है। प्रभु की अति असीम कृपादृष्टि के कारण ही मानव भोगयोनि से मुक्त होकर मोक्ष को प्राप्त कर सकता है। इसकी प्राप्ति के लिये 'वासुदेवः सर्वम्' की दृष्टि अपनानी चाहिए और विचार करना चाहिए कि संसार के कण-कण में ईश्वर व्याप्त है। वही हमें सन्मार्ग, कर्मयोग, भक्तियोग और ज्ञानयोग प्रदान करता है।

मानव मस्तिष्क कहता है कि वह भी गिद्ध पक्षी की भांति दूरदृष्टि के साथ-साथ परमात्मा की दिव्यदृष्टि भी रखता है, परन्तु देहाभिमान के कारण माया में मोहित होने से और आत्मबल एवं मनोबल की कमी के कारण काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, ईर्ष्या, तृष्णा, निन्दा, अहंकार, राग-द्वेष, स्वार्थ आदि आसुरी वृत्तियों व विकारों पर ही उसकी गिद्ध दृष्टि बनी रहती है जो जड़ बुद्धि, जड़ प्रकृति और जड़ दृष्टि की प्रतीक है। इससे मुक्ति पाने के लिए तुलसीदास जी की सम्मति को ग्रहण करना चाहिए। इससे कुदृष्टि को सुदृष्टि में बदला जा सकता है -

एक घड़ी आधी घड़ी, आधी हूँ पुनि आध।
तुलसी संगति साधु की, कटै कोटि अपराध।।
परहित बस जिन्ह के मन माहीं।
तिन्ह कहुँ जग दुर्लभ कछु नाहीं।।

गिद्ध पक्षी मानव से कहता है, प्रभु की असीम कृपा दृष्टि से तुम्हारे मस्तिष्क पर बैठने से, सुसंग से मुझे ज्ञानदृष्टि प्राप्त हो गई। मेरा आत्मप्रकाश जाग्रत हो गया। मेरी भोग योनि कर्मयोनि में बदल गई। मुझे मोक्ष प्राप्त हो गया। इसका कारण मेरे जीवन की निम्न घटना है। दुष्ट रावण आकाश मार्ग से सीता माता को ले जा रहा था। मैंने माता का दुःख व करुणा से भरा क्रन्दन सुना। माताजी की रक्षार्थ मैंने रावण से युद्ध किया। कामान्ध रावण ने मेरे दोनों पंख काट दिये जिससे मैं घायल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। मैं घायल अवस्था में ही 'श्रीराम जय राम जय जय राम'

मंत्र का जाप कर रहा था। जब भगवान् श्रीराम सीताजी की खोज में मेरे पास से निकले तब मैंने प्रभु को पूरा वृतान्त बता दिया कि दुष्ट पापी रावण ही सीता माता को आकाश मार्ग से ले गया है। अंतिम समय में आपके दर्शन से मैं कृतार्थ हो गया। भगवान् श्रीराम ने मेरी गिद्धयोनि के उत्तम मानवीय कर्मों-कार्यों को, **'पर हित सरिस धर्म नहिं भाई'** की भावना से युक्त देखा। उन्होंने मुझे भोगयोनि से मुक्त कर मोक्ष प्रदान कर दिया। सत्य है **'जहाँ सुमति तहँ संपति नाना। जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना।** कलियुग केवल नाम अधारा। **सुमिरि सुमिरि** नर उतरहिं पारा।।' **प्रभुकृपा सर्वदा उत्तम कर्मों के साथ ही अवतरित होती है।**

जटायु पक्षी मानव से कहता है कि **जो मनुष्य देहाभिमान, आसुरी वृत्तियों और विकारों को त्यागकर श्रद्धा और विश्वास की भावना को अपनाकर श्रीगीता-श्रीरामायण के अनुसार आचरण करता है, उत्तम धर्म युक्त, दैवी सम्पदा (गीता 16/1-3) युक्त कर्मों के द्वारा परिवार, समाज, देश और विश्व के हितार्थ निःस्वार्थ भाव से, सकारात्मक दृष्टिकोण से सहयोग, सेवा, समर्पण भाव से, विश्वशांति हेतु दान-पुण्य व सहायता करता है, उसी का कल्याण होता है और वह सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्मा की प्राप्ति कर लेता है।**

हताशा से बचें

- पूज्य श्री प्रमुख स्वामीजी महाराज

हताश वह होता है, जो केवल अपने ही पुरुषार्थ को अपनी सफलता के लिए सर्वोत्तम मानता है। वह उसका मिथ्या अहं है, क्योंकि व्यक्ति हमेशा अनेक सहयोगियों की मदद, गुरु के आशीर्वाद और ईश्वर की कृपा से सफल होता है। मिथ्या अहंकार व्यक्ति को अवश्य निराश ही करेगा। दूसरा कारण है- चरित्रभ्रष्टता। भौतिक सुखों की आसक्ति व्यक्ति को अपने ध्येय से विचलित कर देती है। इन्द्रियों की वृत्ति पर अंकुश बढ़ाने से आत्मबल का विकास होता है।

अंतिम बात है भगवान् एवं संत की शरणागति की, जो निष्फलता के समय निःस्वार्थ प्रेम, उचित मार्गदर्शन तथा योग्य प्रेरणा देकर विघ्नों से टकराने की ताकत देती है। फिर कभी निष्फलता का मुँह नहीं देखना पड़ता।

OO

गीता का प्रधान विषय

- ब्रह्मलीन स्वामी श्री आत्मानंदजी मुनि

निष्पक्ष सात्विक बुद्धि से विचार किया जाये तो **गीता में न तो कर्म का ही उपदेश दिया है और न ही कर्मत्याग का किन्तु केवल उस ज्ञान का ही उपदेश किया गया है जिसके प्रभाव से कर्मरूप क्रिया तो हो परन्तु उसकी प्रतिक्रया न रहे।** प्रकृति के राज्य में देह के साथ बंधा हुआ मानव किसी भी क्षण कर्म शून्य तो रह नहीं सकता, किन्तु प्रत्येक क्षण देह, इन्द्रियों,मन अथवा बुद्धि का कोई न कोई व्यापार चालू रहना जरूरी है (3-5)-

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः।।

कोई भी मनुष्य किसी भी क्षण कर्म किये बिना रह नहीं सकता, किन्तु सभी प्राणी प्रकृति जन्य तीनों गुणों द्वारा परवश होकर कर्म करते ही रहते हैं।

इस प्रकार जब कर्मरूप व्यापार बन गया, तब देहादि के साथ बंधा हुआ देहाभिमानी जीव प्रकृति राज्य में उसके फलभोग के बन्धन से भी कैसे छूट सकता है? किन्तु **अपने-अपने भावानुसार उसके लिये फलभोग का बन्धन अनिवार्य है।** यदि वह हठवशात् कर्मेन्द्रियों को बाँध कर रखे तो मन का व्यापार चालू रहता है और गीता दृष्टि से वह अवश्य कर्म बन जाता है बल्कि मिथ्याचारित्व का दोष मुफ्त में और पल्ले पड़ जाता है। जैसे इसी अध्याय के श्लोक 6 में कहा गया है-

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन्।
इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते।।

अर्थ- जो पुरुष कर्मेन्द्रियों को रोककर मन से इन्द्रियों के विषयों का चिन्तन करता रहता है, वह मूढ़बुद्धि मिथ्याचारी अर्थात् दम्भी ही कहा जाता है।

इसके साथ ही देह और प्रकृतिजन्य तीनों गुणों के साथ बन्धायमान रहने के कारण सात्त्विक, राजस एवं तामस, जैसे-जैसे भाव के अनुसार कर्म का त्याग किया जायेगा, वैसे-वैसे अपने भावानुसार उस त्याग रूप व्यापार में भी उसके लिए फलभोग का बन्धन निश्चित है। क्योंकि वह अभी देह के साथ बँधा हुआ है। और प्रकृति राज्य में ऐसा अटल नियम किया गया है कि देह में आत्मबुद्धि रहते हुए ग्रहणरूप अथवा त्यागरूप जो कुछ भी चेष्टाएँ देहादिद्वारा प्रकट होती हैं, अपने त्रिगुणात्मक भावानुसार वे अपना फल अवश्य देती हैं। इस प्रकार **भेदबुद्धि के कारण कर्म-त्याग भी कर्म बन जाता है और कर्त्ता को अपने फल भोग के बंधन में लाता है।**

इसके सिवा यदि कर्मफल–समर्पण की भावना से कर्म किया जाये तो अपने आत्मस्वरूप के अज्ञान के कारण देहादि से बँधा हुआ प्राणी देहेन्द्रिय–मन–बुद्धयादि से तादात्म्य अर्थात् एकता रखता हुआ जो चेष्टाएँ देह और इन्द्रियों में प्रकट होती हैं तथा उनके फल समर्पण की जो भावनाएँ मनबुद्धि में उद्‌बुद्ध होती हैं, उनका कर्त्ता बना रहने के कारण वह अपने भावानुसार फल समर्पण के फल का भोक्ता अवश्य बनता है। क्योंकि प्रकृति का यह अटल नियम है कि भेदबुद्धि प्राणी अपने आत्मस्वरूप से जुदा पड़कर और देहादि में ही आत्मबुद्धि रख कर जैसी–जैसी भावना से कर्म में प्रवृत्त होता है, अपनी भावना के अनुसार उसके लिए फल निश्चित है, अर्थात् **फल का हेतु अपनी भावना ही है, न कि जड़ कर्म**। यह निष्कामी भावनासंयुक्त होने से और फल–समर्पण की उत्तम भावना रखने से उत्तम फल का पात्र अवश्य होगा, फल शून्य यह कदापि नहीं रखा जा सकता है।

इस प्रकार भेद बुद्धि से आबद्ध रहकर और देहादि में आत्म बुद्धि रखकर चाहे कर्मत्याग किया जाये, चाहे फल–समर्पण की भावना बनाई जाये, कर्त्ता के लिये अपने भावानुसार फल का बंधन अवश्य है। इस प्रकार जब फल का बन्धन अनिवार्य है तब फल चाहे कितना भी महान् हो, स्थूल शरीर के सम्बन्ध बिना उसका भोग असम्भव है। जब स्थूल शरीर का बंधन विद्यमान है तब जन्म–मरण निश्चित है, जो कि महान् दुःख है। जब इस जीव के साथ आदि में जन्म का और अंत में मरण का दुःख लगा हुआ है तब मध्य का सुख भी नाश के भय से दुःख रूप ही बन जाता है। इस प्रकार भेदबुद्धि से बँधा हुआ प्राणी किसी भी प्रकार न कर्म से ही छूट सकता है और न उसकी प्रतिक्रिया रूप दुःखफल भोग से ही मुक्त हो सकता है।

इस प्रकार प्राणी जबकि किसी भी प्रकार न कर्म से ही छूट सकता है और कर्म बन जाने पर न उसकी प्रतिक्रिया से ही छुटकारा पा सकता है, तब इसके लिये कौन सी गति? गीता के सम्मुख यही एक मात्र समस्या है और केवल इसी समस्या को सुलझाने के लिये गीता अवतीर्ण हुई है। इस समस्या को हल करने के लिये **गीता उस तत्त्व ज्ञान का उपदेश करती है, जिसके प्रभाव से देहादि में अज्ञानजन्य आत्मबुद्धि छूटकर अपने वास्तविक आत्मस्वरूप में आत्मरूप से स्थिति प्राप्त कर ली जाये और सब** भेद–छेद कर्पूर के समान उड़ जायें। क्योंकि सब कर्म और तज्जन्य फल भोग का बंधन एक मात्र भेदबुद्धि के कारण ही है जो कि केवल अज्ञानजन्य है। अज्ञान की निवृत्ति एक मात्र अपने आत्मस्वरूप के ज्ञानद्वारा ही सम्भव हो सकती है, अन्य किसी भी प्रकार संभव नहीं, जैसे अन्धकार की निवृत्ति केवल प्रकाश से ही सम्भव होती है।

वह ज्ञान क्या है? 'मैं देहेन्द्रिय मन बुद्धयादि से पृथक् और इनका प्रकाशक 'नित्य शुद्धबुद्धमुक्तस्वरूप' हूँ,' एकमात्र ऐसा अपरोक्ष ज्ञान ही अज्ञान और तज्जन्य भेदबुद्धि का बाधक हो सकता है यही ज्ञान-योग है। इसके विस्तार के लिये 'गीता-दर्पण' पृ.66 से 67 मननपूर्वक अवलोकन करिये। एकमात्र यह ज्ञान ही गीता का प्रतिपाद्य विषय है । इसी विषय को नीचे स्पष्ट किया जाता है-

(1) अपने उपदेश की समाप्ति पर स्वयं भगवान् अर्जुन के प्रति अ. 18 श्लोक 63 में स्पष्ट कथन कर देते हैं कि गीता में एकमात्र ज्ञान का ही उपदेश किया गया है, इसके विपरीत न कर्म का और न कर्म-त्याग का ही उपदेश किया गया है। यथा-

इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद्गुह्यतरं मया।
विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु।।

अर्थ-यह गुह्य से भी अति गुह्य ज्ञान मेरे द्वारा तेरे प्रति कहा गया; इसको भली भाँति विचारकर जैसी इच्छा हो वैसा कर।

आशय यह कि अर्जुन के प्रति ऐसा गम्भीर और गोपनीय ज्ञान कहा गया है, जिसके प्रभाव से गीता अ. 18 श्लोक 17 के अनुसार वह देहादि में अहंकर्ताबुद्धि से तत्काल छूट जाता है और जिसके प्रभाव से वह सम्पूर्ण संसार को मारकर भी नहीं मारता और नहीं बँधता। इसके साथ ही गीता के अ. 18 श्लोक 67 से 71 में इस परम पवित्र शास्त्र अथवा ज्ञान की महिमा भगवान् ने अपने श्री मुख से इस प्रकार वर्णन की है-

''अर्थात् यह शास्त्र तपरहित,भक्तिशून्य, गुरुशुश्रूषाशून्य तथा जो मेरी निन्दा करने वाला हो, ऐसे पुरुषों को कदापि नहीं सुनाना चाहिए। इसके विपरीत जो इस परम गुह्य ज्ञान को मेरे भक्त के प्रति कथन करेगा, वह मेरी इस परा भक्ति के फल स्वरूप मुझको ही प्राप्त होगा। इस संसार में ऐसे भक्त से बढ़कर मेरा प्रिय करने वाला न कोई है और न होगा। इसके अतिरिक्त जो हमारे इस सम्वाद को पढ़ेगा, उसने मानो ज्ञान यज्ञ से मेरी पूजा की, ऐसा मैं मानूँगा। तथा जो श्रद्धावान् इसको श्रवण भी करेगा, वह भी पापों से छूटकर पुण्यकर्मियों के शुभ लोकों को प्राप्त होगा।''

इन भगवद्वचनों से भी इसकी ज्ञानप्रधानता स्पष्ट प्रमाणित होती है क्योंकि इस उत्कृष्ट पवित्रता का पात्र केवल 'ज्ञानी' ही हो सकता है। यदि यह कर्मप्रधान हो तो कर्म के लिये कभी किसी शास्त्र ने ऐसा विधिरूप बंधन नहीं लगाया, किन्तु कर्म के तो सभी अधिकारी माने गये हैं। इसलिये भगवान् के श्रीमुख से विनिःसृत कर्मसम्बन्धी इस शास्त्र की उपर्युक्त इतनी उत्कृष्ट महिमा का कोई अर्थ नहीं रहता। इसके सिवा

श्लोक 72 में भगवान् अर्जुन से पूछते हैं कि क्या तुम्हारा अज्ञानजन्य मोह निवृत्त हुआ? इसके उत्तर में अर्जुन भी छाती पर हाथ रखकर स्वीकार करता है कि हाँ, मेरा मोह निवृत्त हो गया है और मुझे आत्मविषयक स्मृति का लाभ हो गया है। यह बात तो स्पष्ट ही है कि **मोह का निवर्तक केवल ज्ञान ही हो सकता है, कर्म कदापि नहीं। बल्कि कर्म तो अज्ञानजन्य मोह का फल है जो अपने मूल को कदापि नहीं काट सकता।** इस प्रकार गीता के अन्त से तो गीता की ज्ञानप्रधानता स्पष्ट प्रमाणित होती ही है।

(2) यदि गीता के आदि पर दृष्टि डाली जाये तो गीता के करादिन्यास एवं अङ्गादिन्यास भी गीता की ज्ञानप्रधानता का स्पष्ट परिचय देते हैं। **किसी भी ग्रन्थ के करादिन्यास एवं अङ्गादिन्यास के मन्त्र वे ही होते हैं जो उस ग्रन्थ के निचोड़ तथा प्राणस्वरूप हों।** तथा करादिन्यास एवं अङ्गादिन्यास की क्रिया का तात्पर्य भी वही होता है कि जिज्ञासु की उन साररूप मन्त्रों में इतनी प्रीति हो कि वे मन्त्र इसके शरीर और मन के अङ्गभूत बन जाएँ। इस प्रकार गीता के प्राणस्वरूप करादिन्यास और अङ्गादिन्यास के जो मन्त्र हैं, वे ही गीता का प्रधान विषय बन सकते हैं। गीता के प्राणस्वरूप मन्त्र अन्य हों और गीता का प्रधान विषय अन्य हो यह तो किसी भी प्रकार माना नहीं जा सकता। अब यदि **गीता के करादिन्यास और अङ्गादिन्यास के मन्त्रों पर दृष्टिपात किया जाय तो वे सब-के-सब केवल ज्ञानप्रधान ही हैं और कर्म की उनमें गन्ध भी नहीं है।**

(3) यदि गीता ध्यान के श्लोकों पर दृष्टिपात किया जाय तो उससे भी इसकी ज्ञान प्रधानता ही प्रमाणित होती है। यह तो अकाट्य नियम है कि ध्यान का विषय सदैव ध्येय का स्वरूप ही होता है। **ध्येय का स्वरूप अन्य हो और ध्यान का विषय अन्य हो, ऐसा स्वरूप-भिन्न ध्यान तो कभी कहीं देखा-सुना ही नहीं गया।** इस प्रकार **गीता-ध्यान द्वारा जो गीता का स्परूप सिद्ध होता है, वही गीता का प्रधान विषय हो सकता है। गीता का स्वरूप अन्य हो और उसका प्रधान विषय अन्य हो, ऐसा भी कदाचित् संभव नहीं हो सकता।**

गीता-ध्यान के प्रथम श्लोक में गीता को 'अद्वैतामृतवर्षिणी' अद्वैतरूप अमृत की वर्षा करने वाली और 'भवद्वेषिणी' संसार से द्वेष करने वाली अर्थात् सांसारिक रागादि के बंधन को काटने वाली इन नामों से सम्बोधन किया गया है।

दूसरे श्लोक में विशालबुद्धि श्री व्यास भगवान् को नमस्कार किया गया है, जिनके द्वारा महाभारतरूप तैलपूरित पात्र में गीतारूपी 'ज्ञानमय प्रदीप' प्रकाशित

किया गया। इस प्रकार गीता अज्ञानान्धकारनाशक 'ज्ञानमयप्रदीप' के स्वरूप से बखानी गई है।

तीसरे श्लोक में गीता के उपदेष्टा भगवान् श्रीकृष्ण को नमस्कार किया गया है और उनको 'ज्ञानमुद्राय कृष्णाय गीतामृतदुहे नमः' के विशेषणों से विभूषित किया गया है। अर्थात् वे गीतामृत के दुहने वाले हैं और ज्ञानमुद्रायुक्त हैं। तीनों गुणों को टालकर जीव-ब्रह्म की अभेद प्रदर्शक मुद्रा को 'ज्ञानमुद्रा' कहा जाता है, जैसा पीछे इस श्लोक की टिप्पणी में स्पष्ट किया गया है।

चौथे श्लोक में गीतामृत को 'सम्पूर्ण उपनिषद्रूपी गौवों का दुग्ध' वर्णन किया गया है। **वेद के अन्तिम भाग वेदान्त का नाम उपनिषद् है, जिनके द्वारा आत्मस्वरूप की पहचान कराई जाती है और वे सभी ज्ञानप्रधान ही हैं, इसमें तो सन्देह ही नहीं है।** पांचवें श्लोक में जगद्गुरु श्रीकृष्ण को वन्दन किया गया है। छठे श्लोक में रणनदी का स्वरूप वर्णन किया गया है जिसको पाण्डवों ने भगवान श्रीकृष्णरूप केवट की कमान्ड में गीतारूप नौका द्वारा तरी। सातवें श्लोक में महाभारत रूप कमल का बखान किया गया, आठवें और नवें श्लोक में सगुण एवं निर्गुण रूप भगवान् को नमस्कार किया गया। इस प्रकार **गीता ध्यान से भी गीता की ज्ञान प्रधानता ही प्रमाणित होती है।**

अच्छा कार-ड्राईवर

एक बार उद्योगपति हेनरी फोर्ड ने एक कार-ड्राईवर के लिए अखबार में विज्ञापन दिया। तीन व्यक्ति इंटरव्यू के लिए आए। फोर्ड ने उनकी विशेषता पूछी। पहला व्यक्ति बोला-मैं भीड़ में भी सौ मील प्रति घंटा की गति से गाड़ी चला सकता हूँ। दूसरे ने कहा कि मैं सोलह फीट चौड़े गड्ढे को भी फांद सकता हूँ।

तीसरे व्यक्ति ने कहा, **मैं 30-35 मील की गति से गाड़ी चलाता हूँ। मेरे लिए अपनी सुरक्षा, मेरे परिवार की सुरक्षा, आपकी और आपके परिवार की सुरक्षा, साथ ही गाड़ी की सुरक्षा महत्वपूर्ण है। फोर्ड ने उसे रख लिया। अर्थात् बिना संयम के जीवन में कोई भी अन्य विशेषता अर्थहीन है।** ○○

''शिखा बोडुंनि तोडिला दोरा''- मूड़ मुँड़ाने और जनेऊ तोड़कर या हाथ में दंड लेकर , भिक्षा मांगकर अथवा सब कर्म छोड़कर जंगल में जाकर रहने पर भी संन्यास नहीं हो जाता । **संन्यास और वैराग्य बुद्धि के धर्म हैं, दंड, चोटी या जनेऊ के नहीं।** **- वामन पंडित**

ईश्वर का स्वरूप एवं उसके दर्शन के साधन

- डॉ. रामेश्वर प्रसाद गुप्त

श्रीमद्भगवद्गीता ज्ञानयोग एवं कर्मयोग के समन्वय का ग्रन्थ है। श्रीकृष्ण द्वैपायन वेद व्यास कृत महाभारत के भीष्मपर्व के अध्याय अर्जुनविषादयोग से अध्याय मोक्षसंन्यासयोग तक 'श्रीमद्भगवद्गीता' है। महाभारत के उक्त अध्याय श्रीमद्भगवद्गीता ग्रन्थ के नाम से विश्रुत हैं। वासुदेव श्रीकृष्ण ने उक्त ग्रन्थ में अर्जुन को ज्ञान, कर्म, ध्यान एवं भक्तियोग के विषय में निदर्शन किया है।

विद्वज्जन प्राय: गीता को गूढ़योग का ग्रन्थ कहकर इसे क्लिष्ट एवं दुरूह निरूपित करते हैं; लेकिन यथार्थ यह है कि **"गीता मानव मात्र को सरलता एवं सहजता से जीवन जीने की कला का शिक्षण प्रदान करती है।"** इस महनीय ग्रन्थ में योग की परिभाषा भी पूर्णरूपेण सुग्राह्य है। यथा– समत्वं योग उच्यते (गीता–2.48), योग: कर्मसु कौशलम् (गीता–2.50) तथा अन्यत्र भी (6–17)–

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वपनावबोधस्य योगो भवति दु:खहा।।

उचित आहार और विहार करने वाले का, उचित रूप से कर्मों में संलग्न होने वाले का, समुचित शयन करने वाले का तथा उचित समय पर सोने या उचित समय पर जागने वाले का 'योग ' दु:खों का नाश करने वाला होता है।

उपर्युक्त से यह भाव स्पष्ट होता है कि आहार, व्यवहार, स्वप्न, अवबोध एवं कर्म से उचित रीति से आचरण करने वाला व्यक्ति योगी है एवं उसका समत्व योग दु:ख, पीड़ा एवं अनर्थों का विनाशक है।

समत्व, कर्त्तव्यनिष्ठा एवं समुचित रूप से जीवन व्यवहार को योग के रूप में निरूपित करने वाला शास्त्र क्लिष्ट कैसे हो सकता है? इस सुकर सहजग्राह्य 'गीता' ग्रन्थ में अत्यन्त ऋजु मार्ग से एवं ऋजु दर्शन से ईश्वर के स्वरूप का साक्षात्कार कराया गया है। गीता में ईश्वर या ब्रह्म के स्वरूप को स्पष्ट करते हुये श्रीकृष्ण का कथन है कि–

'अक्षरं ब्रह्म परमं' (गीता–8–3)
'ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म' (गीता 8–13)
'अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहु: परमां गतिम्' (गीता–8–21)
'यदक्षरं वेदविदो वदन्ति विशन्ति यद्यतयो वीतरागा:' (गीता 8–11)
'अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम्' (गीता 2–17)

स्पष्ट है कि वह परमात्मा महत् तत्व है, ओऽम् है, अक्षर है, अव्यक्त है एवं अविनाशी है।

'ईश्वर ' के निवास के विषय में भी श्रीकृष्ण ने स्पष्ट कर दिया है कि वह परमेश्वर सम्पूर्ण प्राणियों के हृदय में निवास बनाये हुए है (18-61)-

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया।।

गीता में ईश्वर की प्राप्ति के अत्यन्त सहज, सरल एवं सुन्दर मार्ग बताये गये हैं। ईश्वर के दर्शन के सुरम्य सोपान श्रीमद्भगवद्गीता में प्रस्तुत किये गये हैं। अनामय परमात्मा की प्राप्ति का प्रथम श्रेयस्कर मन्त्र कर्म के फल में अनासक्ति या उस फल का त्याग कहा गया है। यथा (2-51)-

कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः।
जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम्।।

ईश्वर प्राप्ति का श्रेष्ठ साधन स्थिर बुद्धि कही गई है (2-56)-

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते।।

स्थिर बुद्धि व्यक्ति विकार विहीन होकर परमशान्ति को प्राप्त करता है। यथोल्लेख है कि (गीता2/70)-

तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे
स शान्तिमाप्नोति न कामकामी।।

और भी-

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहङ्कारः स शान्तिमधिगच्छति।।

उपर्युक्त से स्पष्ट है कि कामना रहित, मोह रहित एवं निरहंकारी या निरभिमानी व्यक्ति परमशान्ति को प्राप्त होता है। इस प्रकार शान्ति प्राप्त व्यक्ति ही ब्रह्म का सान्निध्य या दर्शन प्राप्त करने में समर्थ होता है तथा ब्रह्मानंद को प्राप्त करता है। यथा विवेचित है कि (2-72)-

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति।
स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति।।

गीता के पन्द्रहवें अध्याय में भी ईश्वर प्राप्ति का शिव एवं सुन्दर मन्त्र निरूपित है कि (15-5)-

निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामा:।
द्वन्द्वैर्विमुक्ता: सुखदु:खसञ्ज्ञैर्गच्छन्त्यमूढा: पदमव्ययं तत्।।

अर्थात् मानमोह रहित, आसक्तिविहीन, आत्मनिरत, निष्काम, सुखदु:खादि द्वन्द्वों से विमुक्त ज्ञानी व्यक्ति परमतत्त्व परमेश्वर को प्राप्त कर लेता है।

ईश्वर शक्ति के दर्शन हेतु अन्य तीन साधन या सोपान श्रीकृष्ण ने गीता के चतुर्थ अध्याय में स्पष्ट किये हैं। इसमें कहा गया है कि उस परमतत्त्व का ज्ञान या उस ईश्वर का साक्षात्कार ज्ञानियों के माध्यम से तीन प्रकार से किया जा सकता है (4-34)-

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिन:।।

अर्थात् आत्मतत्त्व ज्ञानी पुरुषों से अतिविनम्र -व्यवहार द्वारा (दण्डवत् प्रणाम द्वारा), निष्कपट एवं निश्छल भाव से किये गये प्रश्न या जिज्ञासा द्वारा एवं सेवा के माध्यम से वह परमतत्त्व जानने योग्य है या परमतत्त्व का साक्षात्कार करणीय है।

स्पष्ट है कि **भगवद्दर्शन के लिये पूर्ण विनय, निश्छल जिज्ञासा एवं निष्काम सेवा अपेक्षित, अपरिहार्य एवं अनिवार्य है।**

निष्कर्षत: जिसे उपनिषदों में "अंगुष्ठमात्र ज्योति" (अङ्गुष्ठमात्रं ज्योति:) के रूप में निरूपित किया गया है तथा श्रीमदभगवद्गीता में जिस ईश्वर को सभी प्राणियों के हृदय में निवास करने वाला कहा गया है "ईश्वर: सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति," उस परमसत्ता-परमेश्वर को कर्मफल के प्रति अनासक्त, कार्यकर्मनिष्ठ संन्यासी या योगी (6-1) एवं उस ईश्वर के प्रति सतत् अनुरक्त प्राणी (7.1) सहज रूप से जान सकता है, दर्शन कर सकता है, साक्षात्कार कर सकता है। स्पष्ट है कि उस परमेश्वर का सतत् चिन्तन करने वाला प्राणी उसका दर्शन करता है, उससे साक्षात्कार करता है एवं उसे प्राप्त करता है (9-34)-

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायण:।।

और भी (11-55) -

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्त: सङ्गवर्जित:।
निर्वैर: सर्वभूतेषु य: स मामेति पाण्डव।।

उद्योग विभाग के पास, सिविल लाइन्स, दतिया

गीता : हमारा महान् मार्गदर्शक

- श्री रामकिशोर सिंह 'विरागी'

'गीता' हमारा महान् मार्गदर्शक है। हमें किसी और मार्गदर्शक को ढूंढ़ने और खोजने की आवश्यकता ही नहीं है। 'गीता' को छोड़कर किसी और मार्गदर्शक को खोजने तथा ढूंढने की परेशानी उठाना मूर्खता है। इस मूर्खतापूर्ण कार्य में समय, शक्ति और ऊर्जा को नष्ट करना है। मन में उलझन तथा तनाव को व्यर्थ ही बढ़ाना है। सबसे अच्छा यही है कि हम 'गीता' को अपना मार्गदर्शक मान लें।

'गीता' को मार्गदर्शक मान लेने का अर्थ होता है- स्वयं साक्षात् भगवान श्रीकृष्ण (श्रीविष्णु कमलनयन पद्मनाभ) को ही अपना मार्गदर्शक मान लेना और जिसने साक्षात् भगवान को ही अपना मार्गदर्शक मान लिया और उन्हीं के मार्गदर्शन में अपना कार्य प्रारंभ कर दिया तो फिर उसे परम शांति मिलनी ही मिलनी है। गीता के मार्गदर्शन में चलने वाले को परम शांति मिलती है। और, **जब परम शांति मिलती है तब फिर और कुछ मिले या न मिले कोई अन्तर नहीं पड़ता है। इस परम शांति के सामने और सब कुछ तुच्छ है।**

'गीता' का पाठ, अध्ययन, मनन, मंथन, चिन्तन करते ही मन तथा अन्तःकरण अद्भुत शांति से भर जाते हैं। तनाव, निराशा, दुःख, हताशा, क्षोभ, व्यग्रता, व्याकुलता, उद्वेग अपने आप दूर हट जाते हैं। इस परम शांति की अवस्था में हर निर्णय संतुलित और संयमित होता है। गीता के कर्मयोग के सिद्धान्त के अनुसार चलने पर फल की कामना एवं आकांक्षा और आसक्ति मिट जाती है। फलतः निराशा और हताशा का भाव कभी भी बनने नहीं पाता है। कर्मयोग के अनुसार कर्म का संचालन सुचारु रूप से सम्पन्न होता चला जाता है।

हमारे बीच अनेक महापुरुषों का अभ्युदय 'गीता' के मार्गदर्शन में चलने के कारण ही हुआ है। विनोबा भावे, लोकमान्य तिलक, विवेकानन्द, सर्वपल्ली डॉ. राधाकृष्णन्, मदनमोहन मालवीय, जयदयाल गोयंदका, हनुमान प्रसाद पोद्दार, रवीन्द्रनाथ टैगोर, राजा राममोहन राय आदि अनगिनत महापुरुषों ने गीता को अपना मार्गदर्शक मान कर ही काम किए हैं। यहाँ तक कि पूर्व राष्ट्रपति डॉ. अब्दुल कलाम भी 'गीता' के मार्गदर्शन को उचित ठहराते हुए उसको मार्गदर्शक के रूप में स्वीकार करते थे। ये सभी महापुरुष कर्मयोगी रहे हैं।

हम में से कोई भी 'गीता' के कर्मयोग के सिद्धान्त को स्वीकार कर सकता है। 'गीता' के मार्गदर्शन में जीवन को चलाकर देखें तो जीवन में अभ्युदय निश्चित है। और यही अभ्युदय अन्तकाल (प्रयाणकाल) में मोक्ष भी प्रदान करता है।

किशोर भवन, काजीपुर क्वार्टर्स, डॉ. एन. के. सेन पथ, पटना-4

मैं गीता से कैसे जुड़ा?

-श्री विनायक कुंजीलाल भट

चिन्मय मिशन के संस्थापक, स्वामी चिन्मयानन्द जी के प्रवचनों से मैं गीता से परिचित हुआ। साथ ही यह जानने की उत्सुकता हुई कि स्वामीजी ने जो कुछ कहा उसके अलावा गीताजी में और क्या कुछ है? कुछ अनुवादों से सन्तोष न होने पर मूल संस्कृत में पढ़ने समझने की तीव्र इच्छा हुई।

ज्ञान-विज्ञान या किसी भी क्षेत्र में कुछ विशेष शब्दों का उपयोग होता है, जो आम प्रवचनों में नहीं रहते हैं। इसी तरह गीता में कुछ विशेष शब्दों का उपयोग है, जो संख्या में बहुत थोड़े हैं । **इन विशिष्ट शब्दों का सही अर्थ समझ में आने पर गीता बहुत ही सरल, तुरन्त समझ में आने लायक है।** एक दो बार गीता पढ़ने पर अच्छी तरह समझ में आ जाती है, रस आने लगता है, मन लगता है। फिर तो जैसा गोस्वामी जी ने लिखा है-

रामचरित जे सुनत अघाहीं।
रस बिसेष जाना तिन्ह नाहीं।

किन्तु पढ़ने मात्र से कुछ लाभ नहीं होगा। जैसे आप अपनी किसी बीमारी के उपचार का नुस्खा डॉ. से ले आयें। फिर उसे पूजा घर में रखकर रोज पूजा अर्चा करें, आरती उतारें, तो क्या बीमारी दूर होगी? नुस्खे के अनुसार दवा लेनी होगी, परहेज करना होगा, तब कहीं आपको फायदा होगा। इसी तरह गीता में दिये गये संदेशों को आत्मसात् करना होगा और भगवान् के आदेशों के पालन का प्रयास करना होगा, जीवन में उतारना पड़ेगा। थोड़ा भी अभ्यास व्यर्थ नहीं जाता।

गीता से जुड़ने पर मुझे निश्चित रूप से तीन लाभ हुए:- 1) विकट समस्याओं का सामना होने पर मैं विचलित नहीं होता, 2) आसक्ति कम होने से अपनी प्रिय वस्तुओं के खो जाने, टूट जाने या चोरी हो जाने पर मुझे दु:ख नहीं होता और 3) किसी भी स्थिति में मैं अपमानित नहीं होता।

तो आइये, परम शान्तिमय जीवन की ओर बढ़ने का पहला कदम उठाइये। गीता का अध्ययन आज ही शुरू कीजिए। ○○

गीता का संदेश

-ब्रह्मलीन स्वामी चिन्मयानंदजी

❖ हमें न तो कर्म त्यागने चाहिये और न ही इस जगत् को। बुद्धिमत्तापूर्वक जीवन का उपयोग हम ऐसे करें कि कर्त्तव्य पालन के द्वारा ही हम अपने चित्त की अशुद्धियों को दूर कर सकें।

❖ गीता समरांगण के उत्तेजना एवं संघर्षपूर्ण वातावरण में भगवान् श्रीकृष्ण का अर्जुन को पौरुष भरा कर्म का उपदेश है।

❖ महाभारत की कथा मानव मात्र के लिए आशा का यह संदेश देती है कि दैवी गुणों की संख्या कम होने पर भी यदि उन्हें सुसंगठित कर आत्मस्वरूप भगवान श्रीकृष्ण के मार्ग दर्शन में लाया जाये, तो उनके द्वारा काम और लोभ की विशाल सेना पर पूर्ण व स्थायी विजय प्राप्त की जा सकती है।

❖ **कोई कर्म करते हुए यदि हमारा उद्देश्य पाप और अन्याय से पूर्ण होता है तो अनेक साधनों से सुसम्पन्न होते हुए भी हमारे मन में निश्चय ही चिन्ता, अशांति और विक्षेप उत्पन्न होते हैं।**

❖ विवेकी पुरुष में यह सामर्थ्य आ जाती है कि सुख में उसे हर्षातिरेक नहीं होता और न दुःख में अत्यन्त विषाद।

❖ सत्य वस्तु वह है जो भूत, वर्तमान, भविष्य इन तीनों कालों में भी नित्य अविनाशी रूप में रहती है। **तीनों कालों में अबाधित वस्तु ही सत्य कहलाती है।**

❖ जो मरता है वह शरीर है और 'मैं मारने वाला हूँ' यह भाव अहंकारी जीव का है।

❖ **श्रीकृष्ण का जीवन तो आनंद और उत्साह का संदेश देता है। उनका जीवन संदेश है–'रुदन अज्ञान का लक्षण है और हँसना बुद्धिमत्ता का।' 'हँसते रहो' इन दो शब्दों में श्रीकृष्ण के उपदेश को बताया जा सकता है।**

❖ सत्य हमारा ही स्वरूप है। स्वस्वरूप के वैभव से विस्मृत ईश्वर ही मोहित जीव है।

❖ **श्रीकृष्ण के इस दिव्य आह्वान का अर्थ है कि सभी प्रकार की मानसिक दुर्बलताओं को त्याग कर मनुष्य को अपने जीवन में आने वाली चुनौतियों का सामना साहस तथा दृढ़ता के साथ विजय के लिये करना चाहिये। यह उपदेश सम्पूर्ण मानव जाति के लिये उपयोगी और कल्याणकारी है।**

❖ मोह का अर्थ है वस्तु को यथार्थ रूप में न पहचानना (आवरण), जिसके कारण वस्तु का अनुभव किसी अन्य रूप में ही होता है, जिसे विक्षेप कहते हैं और जिसका परिणाम है शोक।

❖ **कर्म करना ही सच्चे कर्मयोगी के लिये सबसे बड़ा पुरस्कार और उपहार है; श्रेष्ठ कर्म करने के संतोष और आनंद में वह अपने आपको भूल जाता है। कर्म है साधन और आत्मानुभूति है साध्य।**

❖ कर्मयोगी के लिये केवल इतना पर्याप्त नहीं कि समभाव में रहकर वह कर्म करे, परन्तु इस नित्य परिवर्तनशील जगत् में रहते हुए इस समभाव को दृढ़ करने का सतत् प्रयत्न करे। इसका उपाय है कर्मों के तात्कालिक फलों के प्रति संग (आसक्ति) का त्याग। संग में विपरीत धारणायें, झूठी आशायें, दिवा स्वप्न, कर्मफल की चिंतायें और भविष्य में संभाव्य अनर्थों का भय ये सभी आ जाते हैं।

❖ **अहंकार है भूतकाल की स्मृतियाँ और भविष्य की आशाओं की गठरी।**

गीताऽमृतम्

-स्वामी सत्यानंद जी महाराज

श्लोक (17-20)-

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम्।।

देना चाहिए ऐसा समझकर जो दान, जिसने पहले अपने ऊपर उपकार नहीं किया, उसको दिया जाता है और देश, काल तथा पात्र को देखकर दिया जाता है वह सात्त्विक दान है।

ऐसे देश में दान देना जहां अन्न की, विश्राम स्थान की और विद्यादि की न्यूनता है, यह देश देखकर दान देना कहा जाता है। काल देखकर देने का तात्पर्य यह है कि भूख के समय अन्न, उष्ण काल में जल तथा श्रान्त को आश्रय, शीतकाल में वस्त्रादि और रात्रि आदि के समय विश्राम देना उचित दान है। ऐसे जन को दान देना जो आलसी न हो, प्रमादी न हो, दुराचारी न हो और द्रव्य का दुरुपयोग न करे तथा साथ ही सुशील, सत्कर्मी और लेने का अधिकारी हो-यह पात्र देखकर दान देना है। दीन, अपाहिज और अनाथजन भी दान लेने के पात्र हैं। ○○

गीता मेरी दृष्टि में

- एल्वीना डेविड

श्री मुख का उद्‌बोधन है ये, जग सृष्टा की वाणी है।
कर्मयोग की परिभाषा, गीता जन कल्याणी है।।

यह मानव देह बड़ी अमूल्य है और मनुष्य जन्म महान पुण्यों का फल है। **आज वैयक्तिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय जीवन में ज्ञान एवं कर्म का सामन्जस्य नहीं होने से यत्र-तत्र भटकन एवं कर्त्तव्यविमूढ़ता दृष्टिगत होने लगी है।** जीवन की इस विडम्बना से मुक्ति पाने का सबसे सरल व सुगम साधन है गीता। वस्तुतः **गीता ज्ञान, क्रिया एवं भक्ति का समन्वित स्वरूप है।**

भगवान ने जीवात्मा के कल्याण हेतु अर्जुन के माध्यम से चार प्रकार के साधन बताये हैं। कर्म, ज्ञान, योग और भक्ति।

कर्म- इस संसार में हम अपने ही कर्म का भोग भोगने के लिए ही बार-बार जन्म लेते हैं। जीवात्मा की जन्म-मृत्यु के बन्धन से मुक्ति ही मनुष्य के लिये सबसे बड़ा कल्याण है। यह मोक्ष निष्काम भावना अर्थात् फल की इच्छा रहित कर्म से प्राप्त हो सकता है। **निष्काम कर्म की पहली सीढ़ी है, स्वधर्म का पालन करना।** अर्जुन का स्वधर्म से विचलन ही भगवद्गीता का प्रेरक बना। रणभूमि में उपस्थित होने वाला अर्जुन जब दोनों ओर की सेनाओं में अपने ही बन्धु-बान्धवों को देखता है तो एकाएक उसके उत्साह का स्थान करुणा ले लेती है, मोह और पाप का भय उसे घेर लेता है। इसलिए भगवान ने अर्जुन से कहा कि तुम युद्ध करो यह तुम्हारा स्वधर्म है। जिन्हें तुम देख रहे हो वे नाशवान हैं, उन्हें तो नष्ट होना ही है इसलिए हे पार्थ! तुम्हारा युद्ध करना धर्म संगत है। तुम कर्म करो, परिणाम मुझ पर छोड़ दो। **जब तक मनुष्य का प्रकृति (शरीर) के साथ सम्बन्ध है तो वह बिना कर्म के जीवित नहीं रह सकता। वह शरीर, मन व वाणी से कुछ न कुछ कर्म तो करेगा ही और वह कर्त्तव्य कर्म नहीं तो अकर्त्तव्य कर्म करेगा जिससे वह संसार में बन्ध जाए, इसलिए संसार से मुक्ति के लिए मनुष्य को अपने स्वधर्म का पालन करते हुए फल की इच्छा का त्याग करना चाहिए।**

ज्ञान-ज्ञान के भी दो रूप हैं- परमात्मा व अपने स्वरूप का ज्ञान। अपने स्वरूप का ज्ञान इन्द्रियों-यथा मन आदि करणों से होता है और इसी ज्ञान से सबको प्रकाश मिलता है, इसलिए **जहाँ बुद्धि कार्य करती है, वहाँ प्रकाश है और जहाँ बुद्धि काम नहीं करती है, वहाँ अज्ञान है ।** अर्जुन का मोह भी ज्ञान से नष्ट हुआ। **जब अर्जुन ने**

मनोवेगों रूपी अश्वों की लगाम भगवान के हाथों में देकर उनकी शरणागति ग्रहण कर ली तभी भगवान ने पार्थ का सारथ्य किया। अर्थात् ज्ञान से शरणागत होने की शिक्षा मिलती है।

योग–मानसिक संतुलन प्रसन्नता की अवस्था का लक्षण है। **योगी कठिनाइयों से घबराता नहीं है, असफलता के सामने घुटने नहीं टेक देता,** सफलता व सम्पत्ति के **नशे में अपनी प्रगति की चाल धीमी नहीं होने देता।** सुखी होना व दु:खी होना दोनों मन की अवस्थायें हैं और ये दोनों ही आने जाने वाली व अनित्य हैं। दु:ख का ज्ञान होने पर मन में उद्वेग न हो तथा सुख का ज्ञान हो तो मन में हलचल न हो तो बुद्धि स्थिर हो जायेगी। अनुकूल–प्रतिकूल परिस्थितियों के आने पर सुखी दु:खी न होने वाला मनुष्य ही संसार से ऊँचा उठकर परम–आनंद का अनुभव करता है। योग मनुष्य में समता का भाव लाता है जिससे मनुष्य निर्विकार हो सकता है। **सब कुछ भगवान ही हैं, यह मानना ही सर्वश्रेष्ठ है।**

भक्ति– परमात्मा की प्राप्ति के लिये ज्ञान व भक्ति दो मार्ग हैं, पर भक्ति का मार्ग गीता में श्रेष्ठ बताया है। **ज्ञान में प्रकृति (संसार) के सिवाय कुछ नहीं जबकि भक्ति में भगवान के सिवाय कुछ नहीं होता है। ज्ञान मार्ग में प्रकृति त्याज्य होती है पर भक्ति मार्ग में कुछ त्याज्य है ही नहीं, सब कुछ वासुदेव ही हैं।** यह भावना आते ही मैं अर्थात् अहम्–भाव भी दूर हो जाता है। क्योंकि जब सब भगवान हैं तो मैं कहां हूँ। किसी ने कहा भी है–

जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि है मैं नाहीं,
प्रेम गली अति सांकरी, या में दो ना समाहीं।

ध्यान योग, लय योग व हठयोग आदि में साधन के बल का आश्रय रहता है पर भक्ति योग में तो केवल भगवान का ही आश्रय होता है। अत: उसके गिरने की या भटकने की सम्भावना कम ही होती है। भक्तियोग का साधक अन्त समय में अन्य के चिन्तन, मूर्च्छा आदि किसी भी कारण से विचलित होकर योग–भ्रष्ट हो जाए या अन्त में कोई कमी रह जाये तो उसको दूर करने की जिम्मेदारी स्वयं भगवान की है। उसे तो स्वयं भगवान याद करते हैं। **परमात्मा के साथ जो स्वत: सिद्ध सम्बन्ध है वह भक्ति–योग है** और संसार के साथ का सम्बन्ध भोग है। **संसार का राग त्यागने से योग होता है व संसार में राग होने से भोग होता है। योग नित्य है, भोग अनित्य है।**

गीता का संदेश है कि मानव अपना उद्धार स्वयं करे। कोई अन्य उसका उद्धार नहीं कर सकता। इस उद्धार में मन का संयम, स्थितप्रज्ञता तथा योगस्थ होकर कर्म करने की सभी स्थितियां आ जाती हैं।

अन्ततः आज का मानव दिग्भ्रमित है। वह क्या करे, क्या न करे, वह नहीं जानता। इस ऊहापोह की स्थिति में वह अनर्थ की ओर प्रेरित हो रहा है। वह अशान्त है, स्वार्थपरता के कारण मानवीय मूल्यों के प्रति अनास्थावान है। दैवी सम्पदा से विमुख होकर आसुरी संपदा में लीन है। विनाश के अंधेरे में भटक रहा है। ऐसी भयावह स्थिति से उसे केवल भगवद्गीता ही उबार सकती है।

गीता का फल अज्ञान का अन्त है, स्मृति लाभ गीता का प्रसाद है, संदेह रहित होना गीता का नीरांजन है। गीता में वर्णित बातों के अनुरूप जीवन में व्यवहार करना गीता की आरती है।

कबीर मनुआ एक है, भावे जहाँ लगाय।
भावे हरि की भगति कर, भावे विषय कमाय।।

अध्यापिका, वैदिक बालिका उ.मा. विद्यालय, आदर्श नगर, जयपुर

साधना-अभ्यास में दृढ़ता

-पूज्य श्री पथिकजी महाराज

- दृढ़ता के लिए दृढ़ संकल्प आवश्यक है।
- दृढ़ संकल्प के लिए शक्ति आवश्यक है।
- शक्ति के लिए संयम आवश्यक है।
- संयम के लिए अनर्थ और व्यर्थ का त्याग आवश्यक है।
- त्याग के लिए भावना एवं सत्य के प्रति प्रेम आवश्यक है।
- प्रेम के लिए सार्थकता एवं सत्य का विवेक आवश्यक है।
- विवेक के लिए संत संग आवश्यक है।
- संत संग के लिए श्रद्धा आवश्यक है।
- श्रद्धा के लिए निर्दोष बुद्धि आवश्यक है।
- निर्दोष बुद्धि के लिए मन का प्रीतियुक्त होना आवश्यक है।
- मन प्रीतियुक्त होने के लिए पूर्ण अपनत्व आवश्यक है।
- पूर्ण अपनत्व के लिए कामना अथवा स्वरुचि का त्याग आवश्यक है। ○○

सुख एवं मोक्ष की प्राप्ति में सबसे बड़ी बाधा-काम

- श्री मुरारी लाल अग्रवाल

दुनियाँ का हर व्यक्ति सुख एवं मोक्ष चाहता है, परन्तु कर्म ऐसे करता है जिनके कारण वह बार-बार जन्म-मरण के चक्र में फंस कर दु:ख पाता रहता है। भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में जो गुरु ज्ञान दिया है, वह सबको सुख, आनन्द एवं मोक्ष देने में समर्थ है परन्तु लोग उस गुरु-ज्ञान को सीखने का प्रयास ही नहीं करते और बेकार गोरखधंधे में पड़कर अपना जीवन बर्बाद कर लेते हैं।

भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता (5/23) में कहा है:-

शक्नोतीहैव य: सोढुं प्राक्शरीरविमोक्षणात्।
कामक्रोधोद्भवं वेगं स युक्त: स सुखी नर:।।

जो व्यक्ति (य:) शरीर छोड़ने या देहावसान से पहले (प्राक्शरीरविमोक्षणात्) इस संसार में रहते हुए ही (इह एव) काम एवं क्रोध से उत्पन्न वेग को (कामक्रोधोद्भवं वेगं) सहन करने में समर्थ होता है (सोढुं शक्नोती) वह (स) योगी है (युक्त:) एवं वही व्यक्ति सुखी (स नर: सुखी) है।

सुख चाहने वाले व्यक्तियों को इसी शरीर में मृत्यु आने से पहले ही काम एवं क्रोध से उत्पन्न वेग को सहन करने की शक्ति अर्जित करने की योग साधना करनी चाहिए है। ऐसे साधक ही सच्चे योगी हैं। काम से ही क्रोध उत्पन्न होता है (कामात् क्रोधोऽभिजायते-गीता, 2-62)। भगवान ने गीता (3/37) में फिर कहा है:-

रजोगुण से उत्पन्न हुआ (रजोगुणसमुद्भव:) यह (एष) काम ही क्रोध है। यह (काम) बहुत खाने वाला (महाशन:, भोगों से कभी न अघाने वाला) और महापापी है, तू इसको (इह) बैरी (वैरिणम्) जान (विद्धि)।

मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु काम है क्योंकि काम से ही क्रोध उत्पन्न होता है तथा ये काम एवं क्रोध ही भगवान से मिलने (योग) में सबसे बड़ी बाधायें हैं।

भगवान आगे कहते हैं- जो व्यक्ति अन्तरात्मा में सुख वाला है, आत्मा में ही रमण करने वाला है तथा जो आत्मा में ही ज्ञान वाला है, वह सच्चिदानंदघन परब्रह्म परमात्मा के साथ एकीभाव को प्राप्त सांख्ययोगी शान्त ब्रह्म को प्राप्त होता है। (5/24)

जिनके सब पाप नष्ट हो गये हैं, जिनके सब संशय ज्ञान के द्वारा निवृत्त हो गये हैं, जो सम्पूर्ण प्राणियों के हित में रत हैं और जिनका जीता हुआ मन निश्चल भाव से परमात्मा में स्थित है, वे ब्रह्मवेत्ता पुरुष शांत ब्रह्म को प्राप्त होते हैं। (5/25)

काम क्रोध से रहित, जीते हुए चित्त वाले, परमब्रह्म परमात्मा का साक्षात्कार किये हुए ज्ञानी पुरुषों के लिये सब ओर से शान्त परब्रह्म परमात्मा ही परिपूर्ण है। (5/26)

बाहर के विषय-भोगों को (चिन्तन न करता हुआ) बाहर ही निकालकर और नेत्रों की दृष्टि को भृकुटी के बीच में स्थित करके तथा नासिका में विचरने वाले प्राण और अपान वायु को सम करके, जिसकी इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि जीती हुई हैं, ऐसा जो मोक्ष-परायण मुनि इच्छा, भय और क्रोध से रहित हो गया है, वह सदा मुक्त ही है (5/27, 28)

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि सुख एवं मोक्ष प्राप्ति में काम ही सबसे बड़ी बाधा है, जिस पर विजय पाना आवश्यक है।

रोगहारी शक्ति

- उड़िया बाबा

रोग-उपचार के भी विविध उपाय हैं-शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक। भक्ति इन तीनों संसारों की नागरिक है। **आध्यात्मिक शक्ति संपन्न व्यक्ति प्रत्येक स्तर के रोगों का उपचार कर सकता है किन्तु इसे अपना व्यवसाय बना लेने पर उसकी संकल्प-शक्ति क्षीण होकर मन बहिर्मुख हो जाता है।**

विक्षिप्त तथा संसार में लिप्त मन किसी भी प्रकार का उपचार करने के योग्य नहीं होता है। स्वार्थ के आते ही मन और उसकी शक्ति का पतन हो जाता है। आध्यात्मिक शक्ति का दुरुपयोग साधक की इच्छा-शक्ति को नष्ट कर देता है। महापुरुषों का कथन है कि **सभी शक्तियां ईश्वर की अनुचरी हैं। वे हमें केवल साधन के रूप में प्राप्त हैं।**

प्रत्येक मनुष्य को रोगों के उपचार की शक्ति प्राप्त है। सर्वरोगहारी शक्ति प्रत्येक मनुष्य के हृदय में प्रवाहित हो रही है। इच्छाशक्ति के सहयोग से इस रोगहारी शक्ति को व्यक्ति के व्याधिग्रस्त शरीर अथवा मन की ओर अभिमुख किया जा सकता है। यह रोगहारी शक्ति व्याधिग्रस्त व्यक्ति का उपचार करके उसे स्वास्थ्य प्रदान कर सकती है। **स्वार्थरहित होना, प्रेम, इच्छाशक्ति तथा घट-घटवासी अविनाशी ईश्वर में अखंड भक्ति-ये ही रोग-शमन के रहस्यमय साधन हैं।** ○○

संत-उत्तर

- डॉ. भीकमचंद्रजी प्रजापति

'मैं भक्त कैसे बनूँ?' इस जिज्ञासा को लेकर मैंने कई संतों एवं साधकों से मुलाकात की, लेकिन कोई संतोषजनक उत्तर नहीं मिला।

मैं जून 1973 में गीताभवन स्वर्गाश्रम गया। उस दिन रामसुखदास जी का प्रवचन पूरा हो गया था। सोचा था कि कल उनसे बात करूँगा। रात्रि में आठ बजे गीता भवन नंबर एक के लॉन में एक संत के प्रवचन का कार्यक्रम था। संत पधारे और आसन पर विराजते ही बोले, किसी भी भाई या बहन को कोई साधन संबंधी प्रश्न पूछना हो तो पूछे। बिना जाने कि यह संत कौन है, मैं सभा में खड़ा हो गया और पूछा, महाराज ! **मैं भगवान् का भक्त बनना चाहता हूँ, उसका ठोस उपाय बताने की कृपा करें। उन्होंने बहुत संक्षेप में उत्तर दिया 'जानी हुई बुराई को छोड़ दो।'**

उनका उत्तर मुझे पसंद नहीं आया। मैंने सोचा कि इन्होंने जप, तप, पूजा, पाठ, भजन, कीर्तन आदि की बात क्यों नहीं कही? क्या इनके बिना भी भक्त बनना संभव है? मैंने दुबारा पूछा महाराज ! नंबर दो पर क्या करें? उनका उत्तर था–**'सबके प्रति सद्भाव रखो। निकटवर्ती जनसमाज को यथाशक्ति क्रियात्मक सहयोग दो।'** मैं आश्चर्यचकित था। पूजा-पाठ आदि साधना क्यों नहीं बता रहे हैं? मैंने पुनः पूछा–इसके बाद क्या करें? संत ने उत्तर दिया **"सद्भाव व सहयोग के बदले कुछ मत चाहो,न अभी चाहो न कभी चाहो, न भोग चाहो न मोक्ष चाहो, न जगत् से चाहो न जगत्पति भगवान् से चाहो।"**

इच्छित उत्तर न मिलने के कारण मेरे मन में कुछ क्रोध आने लगा। मैं चौथी बार खड़ा हुआ और उनसे कहा–महाराज ! यह मेरा अंतिम प्रश्न है। वे तपाक से बोले–मेरा भी अंतिम उत्तर होगा। मैंने कहा–बस, यह बता दीजिये कि नंबर चार पर क्या करें? उनका उत्तर था–पहले ये तीन करके देख लो, चौथा अपने आप मालूम हो जायेगा। मैंने पूछा कैसे मालूम हो जाएगा? वे कड़क कर बोले–तुम कौन सी क्लास में पढ़ते हो? मैं बड़े अभिमान से बोला महाराज ! मेरी पढ़ाई 1965 में पूरी हो गई। मैं पढ़ता नहीं हूँ, यूनिवर्सिटी और कॉलेज में पढ़ाता हूँ। वे बोले–'गधे कहीं के,' तुम क्या पढ़ाते होगे? सभा में सन्नाटा छा गया।

दो मिनट बाद संत बोले– 'बेटा ! तुम पढ़े-लिखे हो, सोचो। अंधेरा है, तुम्हें दस मील जाना है, तुम्हें एक टार्च दे दें तो टार्च की रोशनी जहां तक जाती है, वहाँ तक तुम चले गये तो आगे रोशनी अपने आप हो जायेगी। इस प्रकार तुम दस मील की यात्रा कर लोगे। हमने तुम्हें टार्च दे दी, चलना शुरू करो, मंजिल तक पहुंच जाओगे।' वे बोले–इतनी मेहनत क्यों करवाते हो भैया कि गीताभवन से तुम्हारे गांव तक बिजली के खंभे लगवायें, तार खिंचवायें,बल्ब लगवायें और कहें–अब जाओ। तुम भक्त बन जाओगे। मैं निरुत्तर था। मुझे उन्होंने भरी सभा में गधा कहा था। मेरे मन में दुःख व क्रोध था।

संत आगे बोले–इस लड़के ने हमसे प्रश्न पूछे, भगवत् प्रेरणा से हमने उत्तर दे दिये, हमारे उत्तर इसको पसंद नहीं आये। ओ लड़के ! सावधान हो कर सुन ले और आप लोग भी सुन लो– "यदि इस संसार का कोई भी भाई, कोई भी बहन किसी भी उपाय से उस बुराई का त्याग कर दे जिसे वह बुराई करके जानता है तो इस दुनिया की ऐसी कोई भी चीज नहीं जो उसे न मिल जाए और जिसे आस्तिक लोग अपनी भाषा में भगवान् कहते हैं, वे भगवान् उसके चरणों में लोटने के लिए लालायित न हो जाएं, तो मुझे गोली मार देना, फांसी लगा देना।"

इस वाणी को सुनकर मेरे मन में उनके प्रति श्रद्धा हुई। मन में आया– इतनी ठोस व चुनौतीपूर्ण बात बताने वाले कोई सामान्य संत नहीं, उच्च कोटि के परम भक्त होने चाहिए। मैंने उनके बारे में साधकों से पूछा तो मुझे पता लगा कि इनका नाम स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज है। उनके साथ मेरी वह पहली व अंतिम बातचीत थी। आज मुझे लगता है कि **उनकी कड़वी भाषा के पीछे संत हृदय की महान करुणा थी। वह भाषा मेरे लिए अमोघ आशीर्वाद व वरदान बन गई। आज उस भाषा की स्मृति से आंखें भर आती हैं, रोम-रोम आनंदित हो जाता है। उन महान संत के चरणों में मेरा कोटि-कोटि वंदन !**

'हे भगवान्, मैं आपका हूँ, आप ही मेरे सर्वस्व हैं। कर्त्ता-शास्ता सब आप ही हैं। मैं आपके हाथ का एक साधन हूँ। मेरा अस्तित्व कुछ और नहीं है।'

ऐसा कहने से अहंकार मिटता है और शरणागति सिद्ध होती है।

'हे भगवान् ! मैं आपका हूँ। सब कुछ आपका है। आपकी इच्छा ही पूर्ण हो। आप ही सब कुछ हैं। आप ही सब करने वाले हैं।'

ऐसा बार-बार पाठ करने से अहंता और ममता के भाव समाप्त हो जाते हैं। कर्तृत्व का अभिमान भी मिटता है। **– स्वामी शिवानंदजी सरस्वती**

यक्ष-युधिष्ठिर प्रश्नोत्तर

यक्ष– तप का क्या लक्षण बताया गया है ? दम किसे कहा गया है ? उत्तम क्षमा क्या बतायी गई है ? और लज्जा किसको कहा गया है ?

युधिष्ठिर– **अपने धर्म में तत्पर रहना तप है, मन के दमन का नाम ही दम है, सर्दी-गर्मी आदि द्वन्द्वों को सहन करना क्षमा है और न करने योग्य कर्म से दूर रहना लज्जा है।**

यक्ष– ज्ञान किसे कहते हैं? शम क्या कहलाता है? उत्तम दया किसका नाम है? और आर्जव (सरलता) किसे कहते हैं ?

युधिष्ठिर– **परमात्मतत्त्व का यथार्थ बोध ही ज्ञान है, चित्त की शांति ही शम है, सबके सुख की इच्छा रखना ही उत्तम दया है और समचित्त होना ही आर्जव (सरलता) है।**

यक्ष– मनुष्यों का दुर्जय शत्रु कौन है? अनंत व्याधि क्या है? साधु कौन माना जाता है और असाधु किसे कहते हैं ?

युधिष्ठिर– क्रोध दुर्जय शत्रु है, लोभ अनंत व्याधि है तथा **जो समस्त प्राणियों का हित करने वाला हो, वही साधु है और निर्दयी मनुष्य को असाधु माना गया है।**

यक्ष– मोह किसे कहते हैं? मान क्या कहलाता है? आलस्य किसे जानना चाहिए और शोक किसे कहते हैं ?

युधिष्ठिर– धर्ममूढ़ता ही मोह है, आत्माभिमान ही मान है, **धर्म का पालन न करना आलस्य है और अज्ञान को ही शोक कहते हैं।**

यक्ष– ऋषियों ने स्थिरता किसे कहा है? धैर्य क्या कहलाता है ? परम स्नान किसे कहते हैं और दान किसका नाम है ?

युधिष्ठिर – अपने धर्म में स्थिर रहना ही स्थिरता है, इन्द्रियनिग्रह ही धैर्य है, मानसिक मलों का त्याग करना परम स्नान है और प्राणियों की रक्षा करना ही दान है।

यक्ष– किस पुरुष को पंडित समझना चाहिए, नास्तिक कौन कहलाता है? मूर्ख कौन है? काम क्या है? तथा मत्सर किसे कहते हैं?

युधिष्ठिर– धर्मज्ञ को पंडित समझना चाहिए, मूर्ख नास्तिक कहलाता है और

नास्तिक मूर्ख है तथा जो जन्म-मरण रूप संसार का कारण है, वह वासना काम है और हृदय की जलन ही मत्सर है।

यक्ष- अहंकार किसे कहते हैं ? दंभ क्या कहलाता है ? जिसे परम दैव कहते हैं, वह क्या है और पैशुन्य किसका नाम है ?

युधिष्ठिर- महान् अज्ञान अहंकार है, अपने को झूठमूठ बड़ा धर्मात्मा प्रसिद्ध करना दंभ है, दान का फल दैव कहलाता है और दूसरों को दोष लगाना पैशुन्य (चुगली) है।

यक्ष- अक्षय नरक किस पुरुष को प्राप्त होता है?

युधिष्ठिर- **जो पुरुष भिक्षा मांगने वाले किसी अकिंचन ब्राह्मण को स्वयं बुलाकर फिर उसे 'नहीं' कर देता है, वह अक्षय नरक में जाता है।**

जो पुरुष वेद, धर्मशास्त्र, ब्राह्मण, देवता और पितृधर्म में मिथ्या बुद्धि रखता है, वह अक्षय नरक को प्राप्त होता है।

धन पास रहते हुए भी जो लोभवश दान और भोग से रहित है तथा मांगने वाले ब्राह्मणादि को एवं न्याययुक्त भोग के लिए स्त्री-पुत्रादि को यह कह देता है कि मेरे पास कुछ नहीं है, वह अक्षय नरक में जाता है।

यक्ष- कुल, आचार, स्वाध्याय और शास्त्रश्रवण-इनमें से किसके द्वारा ब्राह्मणत्व सिद्ध होता है ?

युधिष्ठिर- **न तो कुल ब्राह्मणत्व में कारण है न स्वाध्याय और न शास्त्रश्रवण। ब्राह्मणत्व का हेतु आचार ही है, इसमें संशय नहीं। इसलिए प्रयत्नपूर्वक सदाचार की ही रक्षा करनी चाहिए।**

पढ़ने वाले, पढ़ाने वाले तथा शास्त्र का विचार करने वाले ये सब तो व्यसनी और मूर्ख ही हैं। **पंडित तो वही है, जो अपने (शास्त्रोक्त) कर्तव्य का पालन करता है।**

यक्ष- मधुर वचन बोलने वाले को क्या मिलता है ? सोच विचारकर काम करने वाला क्या पा लेता है ? जो बहुत-से मित्र बना लेता है, उसे क्या लाभ होता है ? और जो धर्मनिष्ठ है, उसे क्या मिलता है ?

युधिष्ठिर- मधुर वचन बोलने वाला सबको प्रिय होता है, **सोच-विचार कर काम करने वाले को अधिकतर सफलता मिलती है** एवं जो बहुत-से मित्र बना लेता है, वह सुख से रहता है और जो धर्मनिष्ठ है, वह सद्गति पाता है।

यक्ष– सुखी कौन है ? आश्चर्य क्या है ? मार्ग क्या है ? और वार्त्ता क्या है?

युधिष्ठिर– जिस पुरुष पर ऋण नहीं है और जो परदेश में नहीं है, वह भले ही पांचवें या छठे दिन अपने घर के भीतर साग–पात ही पकाकर खाता हो, तो भी वह सुखी है।

संसार में रोज–रोज प्राणी यमलोक में जा रहे हैं, किन्तु जो बचे हुए हैं, वे सर्वदा जीते रहने की इच्छा करते हैं, इससे बढ़कर आश्चर्य और क्या होगा ?

तर्क की कहीं स्थिति नहीं है, श्रुतियां भी भिन्न–भिन्न हैं, एक ही ऋषि नहीं है कि जिसका मत प्रमाण माना जाय तथा धर्म का तत्त्व गुहा में निहित है अर्थात् अत्यंत गूढ़ है, अतः **जिस मार्ग से महापुरुष जाते रहे हैं, वही मार्ग है।**

इस महामोह रूपी कड़ाहे में भगवान् काल समस्त प्राणियों को मास और ऋतुरूप करछी से उलट–पुलट कर सूर्यरूप अग्नि और रात–दिन रूप ईंधन के द्वारा रांध रहे हैं, यही वार्त्ता है।

यक्ष– पुरुष कौन है ? सबसे बड़ा धनी कौन है?

युधिष्ठिर– जिस व्यक्ति के पुण्यकर्मों की कीर्ति का शब्द जब तक स्वर्ग और भूमि को स्पर्श करता है, तब तक वह पुरुष कहलाता है।

जो मनुष्य प्रिय–अप्रिय,सुख–दुःख और भूत–भविष्यत् इन द्वन्द्वों में सम है,वही सबसे बड़ा धनी है।

जो भूत, वर्तमान और भविष्य सभी विषयों की ओर से निःस्पृह, शांतचित्त, सुप्रसन्न और सदा योगयुक्त है, वही सब धनियों का स्वामी है।

यक्ष ने कहा–अपने भाइयों में से जिस एक को तुम चाहो, वही जीवित हो सकता है।

युधिष्ठिर ने कहा–'नकुल जीवित हो जाय।' यक्ष ने कहा–'प्रिय भीमसेन और बड़े सहारे अर्जुन को छोड़कर तुम किसलिए सौतेले भाई नकुल को जिलाना चाहते हो?'

युधिष्ठिर बोले–यदि धर्म का नाश किया जाय, तो वह नष्ट हुआ धर्म ही कर्ता को भी नष्ट कर देता है और यदि उसकी रक्षा की जाय, तो वही कर्ता की भी रक्षा कर लेता है। इसी से मैं धर्म का त्याग नहीं करता। मेरा विचार है कि **दया तथा समता ही परम धर्म है।** यही सोचकर मैं सबके प्रति दया और समान भाव रखना चाहता हूँ,

इसलिए नकुल ही जीवित हो जाय। मेरे पिता के कुन्ती और माद्री नाम की दो भार्याएं रहीं। वे दोनों ही पुत्रवती बनी रहें, ऐसा मेरा विचार है। मैं दोनों माताओं के प्रति समान भाव ही रखना चाहता हूँ।

यक्ष ने कहा–तुमने अर्थ और काम से भी अधिक दया और समता का आदर किया है, इसलिए तुम्हारे सभी भाई जीवित हो जायें। तब यक्ष ने अपना परिचय दिया कि मैं तुम्हारा पिता धर्मराज हूँ। यश, सत्य, दम, शौच, सरलता, लज्जा, अचंचलता, दान, तप और ब्रह्मचर्य–ये सब मेरे शरीर हैं।

अहिंसा, समता, शांति, दया और अमत्सर–डाह का न होना–इन्हें मेरे पास पहुंचने के द्वार समझो।

युधिष्ठिर ने धर्मराज से वर मांगा कि मैं लोभ, मोह और क्रोध को जीत सकूं तथा दान, तप और सत्य में सदा मेरा मन लगा रहे। धर्मराज ने कहा–तुम तो धर्मस्वरूप ही हो। अतः इन गुणों से तो स्वभाव से ही संपन्न हो। आगे भी तुममें ये सब धर्म बने रहेंगे।

अष्टयाम राम-राम !

- श्री नर्मदानंदजी सरस्वती 'हरिदास'

रसना पै राम–राम, श्रवणों में राम–राम,
अर्चा में राम–राम, चर्चा में राम–राम।
सोते में राम–राम, जगते में राम–राम,
सपने में राम–राम, अपने में राम–राम।
चलते में राम–राम, बैठे तो राम–राम,
निर्जन में राम–राम, बहुजन में राम–राम।
सुख में श्री राम–राम, दुःख में भी राम–राम,
'हरिदास' अष्टयाम, राम–राम–राम–राम।।
योग बने प्रभु राम से, जपे नाम निष्काम।
देह धरे सुखधाम है, देह तजे हरिधाम।। ○○

कृष्ण का व्यक्तित्व

-ओशो

कृष्ण की पूर्णता बहुआयामी है। उनकी दृष्टि विधायक है। उनके जीवन में निषेध का कोई तत्त्व नहीं। महावीर सब कुछ छोड़कर जहां पहुंचते हैं, कृष्ण सबको आत्मसात् करके वहीं पहुंचते हैं।

कृष्ण एकमात्र ऐसा व्यक्तित्व है, जिसने समस्त जीवन को, समस्त दिशाओं को पवित्रता प्रदान की, परिणामस्वरूप यह दिखाया कि किसी भी दिशा से गया हुआ व्यक्ति ब्रह्म तक पहुंच सकता है। इसी अर्थ में वह बहुआयामी है-खुद के जीवन में ही नहीं, दूसरों के जीवन के लिए भी। बांसुरी बजाकर या नृत्य करते हुए भी कोई ब्रह्म को उपलब्ध हो सकता है। बुद्ध और महावीर के अनुसार मीरा कभी उपलब्धि के मार्ग पर नहीं हो सकती, क्योंकि उनकी दृष्टि में राग कभी परमात्मा तक नहीं पहुंचा सकता। **कृष्ण के साथ रागी भी पहुंच जाता है और विरागी भी। बुद्ध, महावीर ये सभी केवल एक आयामी पूर्णता को उपलब्ध हुए। उनकी साधना, एक मार्ग पर पहुंचती है पर अधिक लोगों को प्रभावित नहीं करती। कृष्ण का मार्ग तो हजार धाराओं में बहने वाली उस नदी की तरह है, जो सारी पृथ्वी को घेर लेती है।**

कृष्ण की भाषा में संयम का अर्थ दमन नहीं, संतुलन है। न इस तरफ, न उस तरफ, ठीक मध्य में। त्यागी असंयमी है-त्याग की तरफ, भोगी असंयमी है, भोग की तरफ। भोगी एक छोर छू रहा है, त्यागी दूसरा छोर छू रहा है। संयम का अर्थ है, अति नहीं बीच में। एक आदमी धन के संग्रह में पागल है, दूसरा आदमी धन से पीठ करके भाग रहा है। हमेशा डर रहा है धन से। जैसे धन इकट्ठा करना साध्य था, वैसे ही धन का त्याग भी साध्य बन गया। दोनों असंयमी हैं। भूखा रहना या उपवास संयम नहीं है, ठीक उस तरह जिस तरह अधिक खाना संयम नहीं है। वीणा से मधुर संगीत तभी उत्पन्न होता है जब उसके तार न बहुत अधिक ढीले हों और न बहुत अधिक कसे हों। **चार्वाक और महावीर का यदि कोई सम्मिलन बन सकता है तो वह कृष्ण है।**

कृष्ण के व्यक्तित्व में साधना जैसा कुछ भी नहीं है। साधना बिना प्रयास नहीं हो सकती और दूसरे बिना 'मैं' के साधना नहीं हो सकती। **कृष्ण का मार्ग है- उपासना, स्मरण। उपासना का अर्थ है निकट होते जाना। निकट होने का अर्थ है खुद मिटते जाना। जीवन के परम सत्य से हमारी दूरी ही हमारा अहंकार है। जितना हम अपने को खोते हैं, मिटाते हैं, उतने ही उसके पास होते हैं। जिस दिन हम**

बिलकुल खो जाते हैं, उसी दिन उपासना पूरी हो जाती है, उसी दिन हम परमात्मा हो जाते हैं। उपासना ऐसे है जैसे बर्फ पिघल कर पानी बन रहा हो। बर्फ साधना करेगा तो और सख्त होता जायेगा।

उपासना का अर्थ है शून्य होना, कुछ न होना, नान बीइंग।

हे नाथ ! मैं आपका हूँ

- पूज्य स्वामी श्री रामसुखदासजी

जो सच्चे हृदय से भगवान् की शरण लेता है, उसका जीवन बदल जाता है। एक बार मैं नवद्वीप गया था। मैं वहाँ के प्रसिद्ध 'भजनाश्रम' में ठहरा हुआ था। एक दिन वहाँ कुछ माताएँ कीर्तन कर रही थीं। वहां एक स्त्री ने उठकर भगवान् की शरणागति की बात कही और यह श्लोक कहा-

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम॥

(वा.रा. 6/18/33)

जो एक बार भी शरण में आकर 'मैं तुम्हारा हूँ,' ऐसा कहकर मेरे से रक्षा की याचना करता है, उसको मैं सम्पूर्ण प्राणियों से अभय कर देता हूँ-यह मेरा व्रत है। (भगवान् श्रीराम)

मुझे यह बड़ा सुगम साधन लगा। मैं अपने कमरे में आ गया और किवाड़ बन्द करके एकांत में सच्चे हृदय से भगवान् से कहा, हे नाथ ! मैं आपकी शरण हूँ। ऐसा कहकर मैंने लंबा पड़कर प्रणाम किया। फिर मैं यह बात भूल गया।

एक दिन कोलकाता में एक सत्संग में गया। वहाँ मन लग गया। धीरे-धीरे मेरा जीवन बदल गया। पहले मैं बड़ा तर्क-वितर्क करने वाला था।

जब मनुष्य सच्चे हृदय से भगवान् की शरण हो जाता है, तब भगवान् पर उसके उद्धार की जिम्मेवारी आ जाती है। हे नाथ ! मैं आपका हूँ-सच्चे हृदय से ऐसा स्वीकार करने मात्र से कल्याण हो जाता है, क्योंकि सभी वास्तव में भगवान् के ही हैं। महाभारत में कहा है, 'भगवान् श्रीकृष्ण को एक बार भी प्रणाम किया जाए तो वह दस अश्वमेध यज्ञों के अंत में किये गये स्नान के समान फल देने वाला होता है।' श्रीकृष्ण को प्रणाम करने वाला अर्थात् उनकी शरण में जाने वाला फिर संसार-बंधन में नहीं आता। ○○

कर्त्ता कौन है ?

-म.म.पं. गोपीनाथ कविराजजी

(श्री सतीशचंद सेनगुप्त कोलकाता में किसी कॉलेज में प्रधानाचार्य थे। उन्होंने अपने एक पत्र में कविराज जी से कर्तृत्व भाव को लेकर कुछ प्रश्न किए थे। उसी के उत्तर रूप में कविराज जी ने सितंबर 1954 को पत्र लिखा था।)

आपने प्रश्न पूछा-कर्त्ता कौन है? मैं (अन्यों के साथ) अथवा वह ? दोनों बातें सत्य हैं। फिर भी यथार्थ सत्य जो है वह इन दोनों से अतीत है। **जब तक अहंकार और कर्तृत्वाभिमान है, तब तक मैं ही कर्त्ता हूँ। जैसे कर्म का कर्त्ता मैं हूँ, उसी प्रकार उस कर्म के सुख-दुख रूप फल का भोक्ता भी मैं हूँ, इस अवस्था का नाम है बद्धावस्था या संसारावस्था।** साधारण जीव इस अवस्था में रहकर ही निरंतर जन्म-मृत्यु के घेरे में चल रहा है।

जब अहंकार की निवृत्ति होती है और किसी कर्म का कर्तृत्वाभिमान अपने में नहीं रहता, तब कर्म के लिए 'मैं', उत्तरदायी भी नहीं रहता। यह अवस्था ज्ञान के उदय के समकाल में हो जाती है। इस अवस्था में अपना कर्तृत्व नहीं रहता। इसलिए वस्तुतः वह कर्मफल का भोक्ता भी नहीं रहता। यह ठीक संसारावस्था नहीं है। देहावस्था में इस प्रकार की स्थिति लाभ करने पर इससे क्रमशः जीवन्मुक्ति की अभिव्यक्ति होती है। इस अवस्था में जीव के साधन संस्कारानुसार विभिन्न प्रकार की अवान्तर अवस्थायें हो सकती हैं। **प्रकृति के गुणों से सब प्रकार के कर्म क्रियमाण होते हैं। यह हुई एक दृष्टि। यह विवेक ज्ञान की दृष्टि है। जब तक अविवेक रहता है तब तक देह के साथ विशुद्ध अहंतत्त्व का एक तादात्म्य बोध रहता है। अविवेक कट जाने पर स्पष्ट समझ में आता है कि मैं वस्तुतः कुछ नहीं करता हूँ, करने का अभिमान मात्र मुझमें होता है। गुणमयी प्रकृति ही सब कुछ करती है।**

इसको छोड़कर एक स्थिति और है। तब विचार आता है कि मैं कुछ नहीं करता हूँ, सब कुछ वे ही कराते हैं। वे, यानी प्रकृति का अधिष्ठाता अर्थात् त्रिगुण का संचालक साक्षात् परमात्मा। यही ज्ञान-मिश्र-भक्ति की अवस्था है। इसके अनंतर और भी एक स्थिति है। उस समय भक्ति के विकास के साथ समझ में आता है कि परमात्मा ही सब कुछ करते हैं। यह ठीक नहीं है कि वे कराते हैं और उनके द्वारा प्रेरित होकर मैं करता हूँ। परमात्मा प्रयोजक हैं, मैं प्रयुक्त हूँ। वे जैसे नचाते हैं, मैं ठीक-ठीक उसी प्रकार नाचता हूँ। वे ही इस भवनाट्य के सूत्रधार हैं। त्रिगुणमयी इस स्थिति में भक्ति और ज्ञान दोनों का विकास अधिक है। त्रिगुणमयी प्रकृति उसमें

अधिष्ठित होकर कार्य करती है, साथ ही साथ शुद्ध प्रकृति भी करती है। शुद्ध प्रकृति के कार्य से समग्र संसार तब एक विचित्र अभिनवरूप में प्रतीतिगोचर होता है। सुख-दुःख का उदय तब भी होता है, परंतु वह वास्तव में सुख-दुःख रूप में नहीं परंतु भिन्न-भिन्न प्रकार के रस के आकार में। यही लीलारस का आस्वादन है। ज्ञानी भक्त देह में अवस्थान करते हुए भी इस रस का आस्वादन कर सकते हैं। क्योंकि इस अवस्था में साधक में यथार्थ मलीन देह के अंतराल में विशुद्ध सत्वमय निर्मल देह का प्रकाश होता है। उस स्थिति का विस्तृत वर्णन यहाँ आवश्यक नहीं है।

इसके बाद और भी एक स्थिति है। इस समय साधक समझ सकते हैं **'मैं कर्त्ता नहीं हूँ, प्रकृति में भी कर्तृत्व नहीं है, भगवान भी कर्त्ता नहीं हैं और वे कारयिता अथवा सूत्रधार भी नहीं हैं, फिर भी कर्म हो रहा है।'** यह विशुद्ध ज्ञान की दृष्टि है।

'कर्म कोई नहीं करता है,' फिर भी कर्म अपने आप होता है। इसका नाम है स्वभाव। स्वभाव से कर्म होता है। इस अवस्था में कर्म-अकर्म दोनों में कोई पार्थक्य नहीं रहता। इसके अनंतर ऐसी एक निगूढ़ स्थिति है, जो मानवीय भाषा के अगोचर है। अतएव उसकी आलोचना की चेष्टा व्यर्थ है। उपरोक्त विवरण से आप समझ सकेंगे कि **इस प्रश्न के विभिन्न उत्तर हो सकते हैं और प्रश्न-निर्णय की स्थिति के अनुसार प्रत्येक उत्तर ही सत्य है। आपाततः विभिन्न दृष्टियों में विरोध की प्रतीति दीखने पर भी वस्तुतः किसी प्रकार का विरोध नहीं है।**

हिन्दी बोलने से दिमाग

देश के वैज्ञानिकों ने कहा है कि अंग्रेजी की तुलना में हिन्दी भाषा बोलने से मस्तिष्क अधिक चुस्त-दुरुस्त रहता है।

राष्ट्रीय मस्तिष्क अनुसंधान केन्द्र के डॉक्टरों ने एक अनुसंधान के बाद कहा है कि हिन्दी भाषी लोगों के लिए मस्तिष्क को चुस्त- दुरुस्त रखने का सबसे बड़ा तरीका यही है कि वे अपनी बातचीत में अधिक से अधिक हिन्दी भाषा का इस्तेमाल करें।

विज्ञान पत्रिका 'करंट साइंस' में प्रकाशित अनुसंधान के पूरे ब्यौरे में मस्तिष्क वैज्ञानिकों का कहना है कि अंग्रेजी बोलते समय दिमाग का सिर्फ **बायां हिस्सा सक्रिय रहता है, जबकि हिन्दी बोलते समय मस्तिष्क का दायां और बायां, दोनों हिस्से सक्रिय हो जाते हैं जिससे दिमागी स्वास्थ्य तरोताजा रहता है।**

(साभार, प्रेस मेन 21 नवंबर 2009)

गीता में भक्ति-भाव

-सुरचना त्रिवेदी

भक्ति शब्द 'भज् सेवायाम्' धातु से निष्पन्न है, जिसका अर्थ है– 'सेवा करना'।

भक्ति शब्द भज् धातु से 'क्तिन्' प्रत्यय लगाकर बनाया गया है। किसी को स्वयं से श्रेष्ठ मानकर उसकी सत्ता को अपने से उत्कृष्ट मानते हुए उसके सम्मुख श्रद्धा पूर्वक झुकना तथा अनुकूल व्यवहार करना भक्ति कहलाता है– 'अनन्यानुरागो भक्तिः।'

विद्वानों ने भक्ति का प्रयोग ईश्वर के प्रति निष्काम प्रेम या अनन्य अनुराग के लिए किया है। ईश्वर के प्रति परम प्रेम ही भक्ति है। छान्दोग्योपनिषद में ब्रह्म प्राप्ति या ज्ञान की अवस्था को आत्मरति कहा गया है। आत्मरति की अवस्था में भक्त को ऐसा प्रतीत होता है कि सब कुछ ईश्वरमय है। वह ईश्वर से परमानुराग, परमात्मा में आत्मक्रीड़ा, उनके संयोग का सुख तथा उन्हीं के आनन्द का अनुभव करता हुआ परमात्मस्वरूप हो जाता है। इस अनन्य प्रेमस्वरूपा भक्ति की चर्चा गीता में इस प्रकार की गयी है (10-9, 10)-

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च।।
तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते।।

अर्थात् निरन्तर मुझमें मन लगाने वाले और मुझमें ही प्राणों को अर्पण करने वाले भक्त जन मेरी भक्ति की चर्चा के द्वारा आपस में मेरे प्रभाव को ज्ञात कराते हुए तथा गुण और प्रभाव सहित मेरा कथन करते हुए ही निरन्तर संतुष्ट होते हैं एवं मुझ में ही निरन्तर रमण करते हैं। अतः ध्यान आदि द्वारा मुझमें निरन्तर रमण करने और प्रेम पूर्वक भजने वाले भक्तों को मैं वह तत्त्वज्ञान रूप योग देता हूँ, जिससे वे मुझको ही प्राप्त होते हैं। यहाँ भगवान ने अनन्य प्रेमी भक्त के लक्षणों के रूप में षट्साधनों का कथन किया है, तदनन्तर उनका फल बतलाया है।

गीता में कृष्ण-भक्ति की ही प्रधानता है। ईश्वर की शरण में जाना ही भक्ति है। श्री कृष्ण अर्जुन से कहते हैं (18-66)-

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।

गीता का कोई ऐसा अध्याय नहीं है जिसमें भक्ति का प्रसंग न आया हो। **साधक को चाहिए कि वह अपनी समस्त इन्द्रियों को वश में करके समाहित चित्त होकर ध्यान करे, क्योंकि जिस पुरुष की इंद्रियां वश में होती हैं उसकी बुद्धि स्थिर हो जाती है।** देवर्षि नारद के अनुसार ईश्वर में अनन्य प्रेम हो जाना ही भक्ति है। उन्होंने भक्ति को प्रेमरूपा तथा अमृतस्वरूपा माना है। ऐसी **भक्ति को प्राप्त करके मनुष्य अभय हो जाता है, उसकी समस्त काम-वासनाओं का नाश हो जाता है, किसी वस्तु के प्रति कोई आसक्ति नहीं रह जाती है और न ही विषय-जगत के लिए कोई उत्साह रह जाता है।** देवर्षि नारद ने भक्ति सूत्र में अपने विचारों की पुष्टि के लिए विभिन्न आचार्यों के मतों को अनिर्वचनीय कहा है। गूंगे के स्वाद की तरह उसे कहा नहीं जा सकता।

यज्ञ, दान, तप आदि जितने भी शास्त्र विहित कर्म हैं, उन सबका पर्यवसान परमात्मा में ही होता है। सभी प्राणियों में ईश्वर का वास है। अतः उनकी सेवा करना ईश्वर की पूजा है। इन्द्र, वरुण, कुबेर, यमराज आदि जितने भी लोकपाल हैं तथा विभिन्न ब्रह्माण्डों में अपने-अपने ब्रह्माण्ड का नियन्त्रण करने वाले जितने भी ईश्वर हैं, भगवान् उन सभी के स्वामी हैं। श्रुति में कहा भी गया है-

तमीश्वराणां परमं महेश्वरम्।

(श्वेताश्वतरोपनिषद् 30/6/7)

उन ईश्वरों के भी परम महेश्वर अपनी अनिर्वचनीय माया शक्ति द्वारा भगवान् अपनी लीला से अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों की उत्पत्ति, स्थिति, संहार करते हुए सबको यथायोग्य नियन्त्रण में रखते हैं और ऐसा करते हुए भी वे सबके ऊपर नियन्त्रण रखते हुए सर्वोपरि हैं। इस प्रकार **भगवान् को सर्वशक्तिमान, सर्वनियन्ता और सर्वेश्वर समझना ही उन्हें 'सर्वलोक महेश्वर' समझना है।**

परमेश्वर में अव्यभिचारिणी भक्ति होनी चाहिए। एकाग्र भाव या अनन्य भाव से जो ईश्वर की भक्ति की जाती है, उसे अव्यभिचारिणी भक्ति कहते हैं। जो मनुष्य इस प्रकार की भक्ति से ईश्वर की सेवा करता है, वह सारे गुणों को पार करके ब्रह्म में मिल जाता है। इस प्रकार गीता वस्तुतः अर्जुन ही नहीं अपितु समस्त मनुष्यों के मन में आज के भी उठे प्रश्नों का समाधान है। भक्ति से प्रभावित होने के कारण ही भगवान् अपने भक्तों के कार्य साधन के निमित्त बन जाते हैं, वे ही भक्तों के कार्य-साधक हैं। तभी भक्त कहता है कि आपके अतिरिक्त और कोई अन्य मेरा साध्य नहीं है (4-24) -

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना।।

जिस प्रकार संसारी मनुष्य माया-मोह से आवृत रहता है उसी प्रकार भगवान् के प्रेमी भक्त मन से भगवान का आह्वान करके भगवान् का दर्शन, भाषण, स्पर्श, वार्तालाप, पूजा, आदर-सत्कार और विनोद करते रहते हैं। **भगवान के हृदय में और नेत्रों में समता-शान्ति-ज्ञान-प्रेम आदि-अनन्त दिव्य गुण भरे पड़े हैं। जब वे भक्त पर दृष्टिपात करते हैं तो वे गुण भक्त के मन, बुद्धि, इन्द्रियों, शरीर तथा रोम-रोम में ऐसे प्रवेश कर जाते हैं जैसे फूल में सुगन्ध। उनकी सीमा नहीं रहती।**

भगवद् भक्ति की महत्ता यही है कि शास्त्र मर्यादा तथा लोक मर्यादा का ज्ञान भी भक्त को नहीं रहता। तन-मन-धन, जीवन, प्राण और सर्वस्व भगवान को अर्पण कर देने के कारण भगवान् के अतिरिक्त अन्य किसी में भी उनकी प्रीति तथा ममता नहीं रहती है। ऐसा करते हुए वे भगवत्प्रेम के आनन्द में विह्वल और मग्न हो जाते हैं, इन सबका वर्णन करने में वे कभी संतुष्ट नहीं होते।

इस प्रकार ईश्वर की भक्ति का ही प्रभाव है कि भक्त अलौकिक आमोद-प्रमोद पूर्वक क्रीड़ा करते रहते हैं। भगवान् के गुण, प्रभाव, रूप, लीला आदि का चिन्तन करते हुए उन्हीं के आघ्राण, प्रसाद-भोग, दर्शन, स्पर्श, भाषण, श्रवण, चिन्तन मनन आदि में परम मधुर, रसमय, प्रेममय, अमृतमय और आनन्दमय हो जाते हैं। वे केवल विशुद्ध भाव से भगवान् का भजन करते हैं। श्रीमद्भागवत में भी इसी तथ्य को इस प्रकार व्यक्त किया गया है-

जिसने स्वयं को मुझे अर्पित कर दिया, वह मेरे सिवा न तो ब्रह्मा का पद चाहता है और न देवराज इन्द्र का। उसके मन में न तो सार्वभौम सम्राट बनने की इच्छा रहती है और न वह रसातल का ही स्वामी होना चाहता है तथा वह योग की बड़ी-बड़ी सिद्धियों और मोक्ष की भी अभिलाषा नहीं करता।

ऐसे अनन्य विशुद्ध प्रेमी भक्त को भगवान् वह बुद्धियोग रूप विज्ञान सहित ज्ञान दे देते हैं, जिससे भगवान् के साकार-निराकार, सगुण-निर्गुण स्वरूप का तत्त्व-रहस्य यथावत् समझ में आ जाता है। फलतः उसे प्रेमास्पद भगवान् की प्राप्ति हो जाती है (6-47) -

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना।
श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः।।

सारतः यह कहा जा सकता है कि सम्पूर्ण गीता के प्रत्येक अध्याय में ईश्वर-भक्ति की चर्चा की गई है। **भगवान् की दृष्टि में वही श्रेष्ठ है, वही सर्वोत्तम है और वही सर्वोत्तम योगी है जो भक्ति भाव से युक्त है।**

215, मिश्राना, टुन्नूसिंह चौराहा,
लखीमपुर-खीरी -262701

मैं सतत चलता रहूँगा

- डॉ.ए.पी.जे.अब्दुल कलाम
(पूर्व राष्ट्रपति, भारत)

वादा रहा,
मैं संजोऊंगा वह हौसला
कि सोचूंगा कुछ अलग
वैसे नहीं, जैसे सब सोचा करते हैं।
चलूंगा उन राहों पर, जिन्होंने
अब तक नहीं देखे हैं,
कदमों के निशां
वह शह, जिसका नाम है नामुमकिन
उसके चेहरे से घूँघट उठाऊंगा
लड़ूंगा मुसीबतों से और पछाड़ूंगा उन्हें
कामयाब होने का हौसला होगा मुझमें
हिम्मत है जवानी की निशानी,
और मैं हूँ जवान, इस जवानी के बूते
इस हौसले के सहारे मैं सतत चलता रहूँगा,
कि मेरा देश छू सके समृद्धि के शिखर।

'अर्जुन भयग्रस्त हुआ था,' यह सर्वांश में सत्य नहीं

- डॉ. रामसिंह शर्मा

कुछ लोगों का यह मानना है कि अर्जुन मोहग्रस्त नहीं, भयग्रस्त हुआ था। लेकिन 'अर्जुन भयग्रस्त हुआ था,' कहना पक्षपात या पूर्वाग्रह ही है। आज तक वेद, उपनिषद, गीता, स्मृतियों के व्याख्याकार ऋषियों एवं आचार्यों के विचारों में भिन्नता रही है और रहेगी क्योंकि **दो व्यक्ति शत प्रतिशत समान विचार के नहीं हो सकते।**

अर्जुन मोहग्रस्त हुआ था, कृपयाविष्ट हुआ था, उसमें 'कश्मल' आ गया था, उसने क्लीवता प्रकट की, हृदय दौर्बल्य था, कार्पण्य दोष से भी ग्रसित हुआ था। वह संमूढ़चेता था, केवल भयग्रस्त नहीं।

काम, क्रोधादि की भांति मोह, भय आदि भी संवेग हैं। ये प्रत्येक व्यक्ति में पाये जाते हैं। इनसे सहज छुटकारा नहीं है। वह मोहग्रस्त हुआ था- यह गीता कहती है, गीताकार कहते हैं। स्वयं अर्जुन कहते हैं (2-7) -

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्।।

अर्जुन साधारण मानव नहीं है। वह 'नर-नारायण' में नर रूप है। वह स्वयं संदेह व्यक्त कर चुका है कि उसे पता नहीं कि वह जीतेगा या शत्रु पक्ष के लोग विजयी होंगे।

अर्जुन की मान्यता का खंडन करना ही श्रीकृष्ण का उद्देश्य था। सही अर्थ क्या है- यह सभी विचारकों की अपनी-अपनी मान्यता है। किसी एक विचार को ही पूर्ण सत्य नहीं कहा जा सकता। अर्जुन भ्रमित है। उसे केवल मृत्यु का भय नहीं सता रहा है। उसे स्वधर्म या कर्त्तव्य का पाठ सिखाना ही श्रीकृष्ण का लक्ष्य था। अर्जुन अपने स्वजनों को युद्धस्थल में उपस्थित देख कर कहते हैं (1-29,30)-

सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति।
वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते।।
गाण्डीवं स्रंसते हस्तात्त्वक्चैव परिदह्यते।
न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः।।

ये (उक्त) शारीरिक लक्षण तो हैं ही, साथ ही उसकी मानसिक तथा आंतरिक अवस्था के भी परिचायक हैं। **पहले कोई भी भाव या विचार मन में ही आता है,**

तत्पश्चात् उसके प्रभावस्वरूप शारीरिक लक्षणों में व्यक्त होता है। यह मनोवैज्ञानिक तथ्य है। अपने स्वजनों को देख उसकी उक्त अवस्था हुई है जो मोह का कारण है। उससे भय उत्पन्न हुआ है कि अब क्या होगा ? अतः मोह मूलभाव है, भय उपभाव है।

भयग्रस्त होना स्वाभाविक है किन्तु उसे केवल भयग्रस्त बताना सही नहीं है। अर्जुन को श्रीकृष्ण से आश्वासन मिला कि विजय उसी की होगी। उसे तो केवल निमित्त मात्र बनना है। कारण जगत् में तो सभी प्रमुख योद्धा पहले ही से भगवान् द्वारा मारे जा चुके थे।

अर्जुन को अपने बंधु-बांधव, भीष्म पितामह एवं गुरु के वध से पाप का भय था। उसका समाधान श्रीकृष्ण ने कर दिया था। उसे मृत्यु भय से भी मुक्त कर दिया था क्योंकि वह आत्मा है, शरीर नहीं। श्रीकृष्ण उसकी समस्त स्थिति को जानते थे। इसलिए उन्होंने उसे आश्वस्त किया, कर्त्तव्य मार्ग बताया और क्षत्रिय धर्म का भी स्मरण कराया।

अंत में भगवान् ने पूछा "कच्चिदज्ञानसम्मोहः प्रनष्टस्ते धनंजय।" हे अर्जुन! क्या तेरा अज्ञानजनित मोह नष्ट हुआ? अर्जुन का उत्तर था (18-73) -

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।
स्थितोऽस्मि गतसंदेहः करिष्ये वचनं तव।।

अर्जुन ने 'नष्टो मोहः' कहा 'नष्टं भयम्' नहीं। **मोह, कार्पण्य आदि का निवारण, आत्मा की प्रतिष्ठा एवं धर्म-कर्त्तव्य का निर्वहन कराना गीताकार का उद्देश्य है।** सभी विकारों से ऊपर उठाना, त्रिगुणातीत बनाना तथा अपने प्रति पूर्ण समर्पण द्वारा ब्राह्मी स्थिति को प्राप्त कराना-भगवान् वासुदेव का लक्ष्य है। इसीलिए 'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज'- यह उनका परम वचन है।

कुछ संत-महात्माओं का मानना है कि अर्जुन और श्रीकृष्ण नर-नारायण हैं। भगवान् ने अपने अवतार का उद्देश्य पूर्ण करने हेतु -

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे-युगे।।

अर्जुन को निमित्त बनाकर उन्हें इस भूमिका में एक पात्र के रूप में प्रतिष्ठित किया था। वास्तव में उनमें शोक, मोह, भ्रम, भय आदि कोई विकार नहीं था। ○○

प्रभु-प्रेम के अधिकारी बनें

- श्री शादीलाल वर्मा

जब तक हम परिस्थिति को ही जीवन मानने की भूल करते रहेंगे तब तक जगत से ऊपर उठ कर हम भगवत्-प्रेम के अधिकारी नहीं हो सकते। प्रत्येक परिस्थिति तो प्राकृतिक न्याय है और साधन साम्रगी है। साधन सामग्री के सदुपयोग से ही साध्य की प्राप्ति होती है। परिस्थिति को ही जीवन मान लेने से हम दीनता और अभिमान की अग्नि में जलते रहेंगे। हमारे **प्यारे के द्वारा भेजी हुई प्रत्येक परिस्थिति के स्वागत तथा सदुपयोग में ही अपना मंगल है।** क्या कोई जननी अपने शिशु को ऐसी परिस्थिति भेज सकती है जिसमें उसके लाड़ले का अमंगल हो। परिस्थिति को ही जीवन मान कर हम अपने तथा परिस्थिति के निर्माता को भूल जाते हैं। **कोई भी परिस्थिति न तो सर्वांश में अनुकूल और न ही सर्वांश में प्रतिकूल होती है। प्रत्येक परिस्थिति सुख तथा दुःख से युक्त होती है। सुख हमें उदार बनाने के लिये आता है और दुःख अचाह होने की प्रेरणा देता है।** सुख-दुःख के सदुपयोग का नाम ही शुद्ध भौतिकवाद है। सुख-दुःख से अतीत हो जाने का नाम ही अध्यात्मवाद है। सुख-दुःख से अतीत हो जाने पर जिस प्रियता का उदय होता है, उसी का नाम आस्तिकता है। इसी आस्तिकता में प्रवेश पाने के लिये भगवान कृष्ण अर्जुन को प्रेरित कर रहे हैं (12-17)-

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः।।

जो न तो शुभ मानी जाने वाली परिस्थिति को पाकर हर्षित होता है और न ही अशुभ परिस्थिति के प्रति द्वेष भावना रखता है, ऐसा हर्ष और शोक से अतीत हो जाने वाला भक्त ही मुझ को प्रिय है। **अनुकूल परिस्थिति को पसन्द कर लेने से सुख की दासता उत्पन्न होती है और प्रतिकूल परिस्थिति की नापसन्दगी दुःख के भय को जन्म देती है।** दासता और भय ने ही तो हमें जगत से बान्ध रखा है। जब किसी भी परिस्थिति की चाह नहीं रहती और प्राप्त परिस्थिति की दासता नहीं रहती तब इसी परिस्थिति के अतीत वाले जीवन का नाम ही मुक्ति है। **जगत् के प्रति किसी भी आवश्यकता का न रह जाना ही मुक्ति है और दूसरों की आवश्यकता की पूर्ति करते रहने का नाम ही भक्ति है। प्रत्येक परिस्थिति को अपने प्यारे का ही आदेश तथा सन्देश मान कर उसी के नाते उसके प्यारे-प्यारे जगत की सेवा करने वाले का नाम ही भक्त है।** शरणानन्द जी महाराज कहा करते थे कि मुहब्बत में यह गुंजाइश ही

नहीं है कि प्यारे की कोई भी चीज ऐसी हो जो प्यारी न लगे। जब अपनी महबूबा का दिया हुआ रूमाल इतना प्यारा लगता है तब अपने परम आत्मीय प्रभु के द्वारा भेजा हुआ परिस्थिति-रूपी प्रेम पत्र प्यारा कैसे न लगेगा। प्रभु में आस्था न होने के कारण ही हम जीवन का अनाथपन ढो रहे हैं, नहीं तो जिस का कोई प्रिय होता है उसके जीवन में नीरसता नहीं रह सकती। अपने प्यारे की मधुर स्मृति ही जीवन को मिठास से भर देती है।

आलस्य

-साधु श्री अक्षरजीवनदासजी

आलस्य का दूसरा नाम है असावधानी। लापरवाह मनुष्य अपने जीवन में कोई कार्य सिद्ध नहीं कर सकता।

विष्णुगुप्त नीतिशास्त्र में कहते हैं, 'अलब्ध-लाभो नालसस्य।' 'अलसस्य लब्धमपि रक्षितुं न शक्यते।' 'न चालसस्य रक्षितं विवर्धते।' 'न भृत्यान् प्रेषयति।' 'न तीर्थं प्रतिपादयति।'

अर्थात् आलसी व्यक्ति रखने योग्य वस्तु को भी नहीं रख सकता। प्राप्त वस्तु की रक्षा नहीं कर सकता, उसे बिगाड़ देता है और प्राप्त किए हुए को बढ़ा नहीं सकता। नौकरों से कोई काम नहीं ले सकता और आलसी पूजनीय संतों के पास से कोई भी ज्ञान बोध भी प्राप्त नहीं कर सकता।

आलसी की भगवान् भी मदद करने को तैयार नहीं होते।

एक कहावत है कि 'आलस्य निर्बल मनुष्यों का घर है और प्रमाद मूर्खों का वेकेशन है।

आलसी मनुष्य को इस लोक का भौतिक सुख प्राप्त नहीं होता और मृत्यु के बाद भी उसकी सद्गति नहीं होती।

'नास्ति अलसस्य ऐहिकामुष्मिकम्।' (चाणक्यनीतिः 173)

आलसी को चारों पुरुषार्थों में से एक भी प्राप्त नहीं होता। अर्थ और काम के अभाव में इस संसार में उन्नति नहीं होती तथा धर्माचरण में प्रवृत्ति नहीं होने से उसकी मोक्ष के मार्ग में गति नहीं होती। इस प्रकार आलसी के इहलोक-परलोक दोनों बिगड़ जाते हैं। ○○

सरदार ऊधमसिंह

सरदार ऊधमसिंह का जन्म 26 दिसंबर 1899 को पूर्व पटियाला राज्य के जिला संगरूर के सुनाम कस्बे में एक निर्धन परिवार में हुआ था। बचपन में ही माता-पिता का देहांत हो गया और वे अमृतसर के पुतलीघर अनाथालय में पलकर बड़े हुए।

सन् 1919 में तत्कालीन अंग्रेज सरकार ने 'रोलट एक्ट' नाम का एक नया कानून बनाया, जिसका चारों ओर बहुत विरोध हुआ। 13 अप्रेल1919 को सायं 4 बजे अमृतसर में एक शांतिपूर्ण जलसा चल रहा था। वक्ता बोल रहे थे। **उस समय नरपशु क्रूर असभ्य जनरल डायर, माइकल ओड्वायर और नीच जैटलैण्ड सैनिकों की टुकड़ी के साथ वहां पहुंचे और उस बाग को चारों ओर से घेर कर बिना चेतावनी के गोलीबारी शुरू कर दी।** सैकड़ों निहत्थे स्त्री-पुरुष, युवा-बच्चे दस बारह मिनट की गोलीबारी में मारे गये। ऊधमसिंह को घायलों की सेवा का मौका मिला। **उस देशभक्त का मन प्रतिकार की भावना से व्याकुल हो उठा।** उसने नीच डायर और उसके साथियों द्वारा किये गये अत्याचारों का बदला लेने की प्रतिज्ञा की।

सन् 1923 में वे सुप्रसिद्ध क्रांतिकारी भगतसिंह, चंद्रशेखर आजाद, सुभाषचंद्र बोस, लाला लाजपतराय, डॉ. किचलू, हरदयाल एम.ए., डॉ. सत्यपाल आदि के सम्पर्क में आये। वे मन ही मन भगतसिंह को अपना गुरु मान चुके थे। सन् 1923 में वे लाहौर पहुंचे तो सरकार ने उन्हें गिरफ्तार कर सन् 1928 में चार वर्षों का कठोर कारावास दिया। जेल में भी वे दूसरे कैदियों को अंग्रेजों के विरुद्ध भड़काते रहे। सन् 1932 में जब वे जेल से रिहा हुए तब राम मुहम्मद सिंह आजाद के नाम से पासपोर्ट प्राप्त करके जर्मनी चले गए और फिर इंग्लैण्ड पहुंचे। वे जलियांवाला बाग का दृश्य भूले नहीं थे। तब तक नीच डायर मर चुका था। 13 मार्च 1940 को कैक्सटन हाल के ज्यूडर रूम में एक विशेष सभा चल रही थी। ऊधमसिंह ने किसी प्रकार एक निमंत्रण पत्र फ्रैंक ब्राजिल के नाम से प्राप्त किया। वकालत की एक मोटी पुस्तक के पन्ने बीच में से काटकर उसमें गोलियों से भरा एक पिस्तौल रखा। वकील की वेशभूषा में वे वहां पहुँचे। सहस्रों भारतीयों का खून बहाने वाला नराधम ओड्वायर वहाँ अपने घिनौने, पशुतापूर्ण वीभत्स कुकर्मों की प्रशंसा कर रहा था। भारतीय संस्कृति और सभ्यता का मजाक उड़ा रहा था। देश के सच्चे सपूत वीर ऊधमसिंह ने उसे दो गोलियों से उड़ा दिया। वह वीर गर्व के साथ अपने गुरु भगतसिंह के समान

अपने स्थान पर खड़ा रहा और गिरफ्तारी दी। 31 जुलाई 1940 को उन्हें लंदन की पेंटल विला जेल में फाँसी पर चढ़ा दिया गया। फांसी के पूर्व उन्होंने अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण होने के लिए सर्वशक्तिमान् परमेश्वर का धन्यवाद किया। उन्होंने कहा कि "जिस देश की माटी से मेरा शरीर बना है, जिसका अन्न-जल खा-पीकर मैंने पवित्र वायु में सांस ली है, वह शरीर उसी की धरोहर है। भारत माँ के चरणों में मेरा बार-बार प्रणाम! उसकी पावन रज मेरे मस्तक को सदा शोभायमान करती रहेगी और उसके दर्शनों की तीव्र अभिलाषा मुझे सदैव बनी रहेगी। मेरा बलिदान भारत के क्रांतिवीरों को प्रेरणा देगा और अंग्रेजी राज्य की कब्र पर भारत का झंडा लहरायेगा।" धन्य है वह सपूत, जिसने इंग्लैण्ड जाकर अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण की।

देशभक्ति की यह मशाल, कभी न बुझने पाये।
अगणित वीरों के बलिदानों की, गाथा हमें सुनाये।।
देश रहे स्वतंत्र सदा, यह संकल्प हम दोहरायें।
इसके लिये जियें मरें हम, इस पर सर्वस्व लुटायें।

शांति का मार्ग

- मार्कस ऑरेलियस

जीव-दया, स्वावलंबन और न्याय-इन तीनों वस्तुओं को न भूलने से ही शांति मिलेगी। अपने स्वाभाविक धर्म का बिना किसी आडंबर के, उदार हृदय से पालन करो। कोई भी काम लगन के साथ करो और यह सोच कर करो कि फिर उसे करने का मौका शायद ही कभी मिले। विवेक को बिगाड़ने वाले रागद्वेषादि को छोड़ो। अहंकार, दंभ, ईश्वर के प्रति असंतोष-इन दुर्भावनाओं को मन में स्थान न देकर अपने कर्तव्यों का पालन करो। तुम्हें अनुभव हो जायेगा कि धर्म से विचलित न होकर शांत चित्त से जीवन व्यतीत करना बहुत कठिन नहीं है।

बाह्य चीजों से व्यग्र मत होओ। किसी अच्छे कार्य में मन लगाकर अपने दुख को भूलने का प्रयास करो। असली चीज को न पहचान कर, नाना प्रकार के कार्यों में लगकर जीवन यों ही समाप्त कर देना मूर्खता है। अपने आचरण और अपने विचार को कर्तव्य-धर्म से नियंत्रित करो। यही शांति का मार्ग है। ○○

श्रीमद्भागवत की महिमा

- श्री एम.डी. माहेश्वरी

श्रीमद्भागवत की महिमा शब्दातीत है। इसमें सभी वेद व उपनिषदों का सार है। यह जीवन काल में, मरने के पूर्व ही मुक्ति प्राप्ति की कला सिखाती है।

वेदव्यास जी चाहते थे कि मनुष्य को ब्रह्मानंद की प्राप्ति हो, उसका कल्याण हो। इसीलिए उन्होंने भागवत की रचना की तथा इसके बाद अपनी लेखनी रख दी। यही उनकी अंतिम रचना है। लेकिन इसका पूरा लाभ तभी मिलता है जब इसके सिद्धांतों को मनन करके आचरण में लाया जाय।

इसकी महिमा का वर्णन कौन कर सकता है? यह तो श्रीनारायण का ही स्वरूप है। जब श्रीकृष्ण गोलोकधाम पधारे तब अपने तेजस्वरूप को उन्होंने भागवत में रख दिया। यह श्रीकृष्ण की वाङ्मय मूर्ति है। श्रीकृष्ण ने उद्धव को कहा था कि जो भागवत का आश्रय लेगा, कलि का प्रभाव उसके घर में नहीं होगा। यह श्री भगवान् का नामस्वरूप है। भागवत कथा मन को शुद्ध करती है। यह स्तुति, वंदन एवं अर्चन की महिमामयी भूमि पर भक्त का आत्मसमर्पण और परमात्मा की अनुकंपा है। यह ज्ञान के आलोक में भक्ति पूर्ण नमन से ईश्वर को जानने की साधना भी है और सिद्धि भी।

भागवत-कथा सुनने और मनन करने से सभी लौकिक सुखों की लालसा-कामना समाप्त हो जाती है और मानव अलौकिक दिव्यानंद की अनुभूति करने लगता है। यह भगवान् के मधुरतम प्रेमरस का छलकता हुआ सागर है। भावुक भक्तजन इसमें अवगाहन करते हैं। इसके पारायण से अलौकिक प्रेम की प्राप्ति होती है।

भागवत में कुल 12 स्कंध, 335 अध्याय और 18 हजार श्लोक हैं। यह ज्ञान, वैराग्य और भक्ति की स्थापना के लिए ही रचा गया है। संसार के समस्त दुख-दारिद्र्य की निवृत्ति भागवत-कथा सुनने से सहज ही होती है।

भागवत-कथा मनुष्य को निर्भय बनाती है। इसका आश्रय लेने वालों को यह अनुभव होता है कि वे ईश्वर के ही अंश हैं। मृत्यु का भय समाप्त होता है। जो मनुष्य काम, क्रोध, लोभ, अहंकार आदि विकारों पर विजय प्राप्त कर भक्ति और प्रेम मय जीवन जीता है, वही काल पर विजय प्राप्त करता है। ध्रुव जी महाराज काल के सिर पर पांव रखकर ही बैकुंठ धाम गये थे।

यह कथा मृत्यु को सुधारती है। कथा का आश्रय लेने वाला अमर हो जाता है। भागवत का आश्रय लेने वाला बिना योग और तप के ही ईश्वर को प्राप्त होता है।

हम मनुष्य धन्य हैं कि यह परम आनंदमयी सुधा से परिपूर्ण दिव्य भागवत हमारे धरती लोक पर ही सुलभ है।

उत्कंठा की क्रमिक अवस्थाएं

- डॉ. विद्यानिवास जी मिश्र

मृत्यु के समय वृत्रासुर ने आकुल होकर कहा–

अजातपक्षा इव मातरं खगाः
स्तन्यं यथा वत्सतराः क्षुधार्त्ताः।
प्रियं प्रियेव व्युषितं विषण्णा
मनोरविंदाक्ष दिदृक्षते त्वाम्।।

एक उत्कंठा है असहाय चिरौंटे की, पंख नहीं उगे हैं। दिन भर घोंसले में कुलबुलाता रहता है। झांकता रहता है। शाम होते ही भय और अकुलाहट से माँ की बाट जोहने लगता है। वह आयेगी और चोंच खोलकर स्वयं चुग्गा डालेगी। इस अवस्था में निस्सहायता चरम पर है। केवल एक ही सहारा मालूम है। दूसरे शब्दों में केवल इच्छाशक्ति है।

दूसरी अवस्था है, जिसमें अपनी भी कुछ क्रिया शक्ति है, पर सीमित है। वह शक्ति माँ के स्तन्य से मिलती है और दिन ढलते ही जैसे बछड़े को भूख सताती है और उसकी मां भी अकुलाती हुई, रंभाती हुई आती है और बछड़े की भूख से पिन्हा जाती है, वैसे ही उत्कंठा दोनों ओर उदग्रतर हो जाती है। इस अवस्था में ज्ञान शक्ति नहीं है।

तीसरी अवस्था है, जिसमें इच्छा, क्रिया और ज्ञान तीनों शक्तियों का विकास रहता है और इसी से जिसमें आकुलता का चरम उत्कर्ष आ जाता है। इस आकुलता में कुछ भी अपेक्षा नहीं रहती। जैसे प्रिय परदेस गए, आने की अवधि दे गए। अवधि बीती जा रही है। प्रिया सोच रही है, आ क्यों नहीं रहे, या शायद आ रहे हैं, नहीं, अब नहीं आयेंगे, क्यों नहीं आये, कितने संकल्प–विकल्प होते हैं और उसकी प्रतीक्षा दुःसह हो जाती है। एक–एक पल छटपटाहट का एक शिखर बनता जाता है, सांसों में अकुलाहट समा जाती है। कमलनयन को देखने के लिए आंखें बंदनवार बन जाती हैं। सारी शक्तियाँ आत्मिक बेचैनी में विलय पा जाती हैं।

भागवत सोपानशः श्री कृष्ण के लिए यही तरस पैदा करती है। ○○

देशभक्ति के पर्याय-'नेताजी'

23 जनवरी 1897 को जन्म लेने वाले सुभाषचन्द्र बोस ने अपने सम्पूर्ण जीवन की आहुति भारत माता के बंधन काटने में चढ़ा दी। बी.ए. आनर्स करने के मात्र आठ माह के अध्ययन के बाद उन्होंने आई.सी.एस. की प्रतियोगात्मक परीक्षा उत्तीर्ण की तथा योग्यता सूची में चतुर्थ स्थान प्राप्त किया। परन्तु भारत की आजादी की लड़ाई लड़ने हेतु उन्होंने त्यागपत्र दे दिया।

देश को आजाद कराने के संघर्ष में नेताजी का योगदान अप्रतिम है। उन्होंने युवा शक्ति को नेतृत्व देकर देश की गुलामी की जंजीरें तोड़ने हेतु लामबंद किया, न केवल देश में, किन्तु विदेशों में भी। उनकी सच्चाई व जुझारूपन के कारण जनता ने उन्हें नेताजी कह कर पुकारा। स्वयं गांधीजी के अनुसार वह देशभक्तों के भी देशभक्त थे। उन्होंने हिटलर को भी माफी मांगने के लिए विवश किया।

छोटी आयु में ही वे मानते थे कि मनुष्य जीवन केवल भोगों के लिए नहीं है। उनका मन मातृभूमि के लिए कुछ करने को उद्वेलित रहता था। उन्होंने संसार भर के इतिहास और सभ्यताओं के उत्थान-पतन के कारणों का अध्ययन और मनन किया। इससे उन्हें अपने देश की वास्तविक दशा, उसके पतन के कारण और ऊँचा उठने के लिए भावी कार्यक्रम का ज्ञान होता गया।

उनके द्वारा गठित आजाद हिन्द फौज का नारा 'जय हिन्द' आज हमारे देश का राष्ट्रीय नारा है, जो आज भी ताकत प्रदान करता है, जोश भरता है। भगतसिंह के प्रकरण को लेकर व अन्य कई मामलों में उनके गांधीजी से गंभीर मतभेद थे, अतः उन्होंने कांग्रेस अध्यक्ष का पद छोड़कर अपना स्वतंत्र मार्ग चुना।

आजादी के इस महानायक का राष्ट्र के प्रति योगदान सर्वाधिक रहा है। आजादी के लिए जिस स्तर का उन्होंने संघर्ष किया, वह विश्व में एक ही उदाहरण है। उनका सबसे बड़ा योगदान तो अंग्रेजों से बराबरी के मुकाबले के लिए सैनिक कमान की स्थापना करने का है। आजाद हिन्द फौज के माध्यम से उन्होंने कई देशों में बसे भारतीयों को एकजुट किया।

उन्होंने गीता के सिद्धांतों को आत्मसात् किया था। वे गीता की एक प्रति सदैव अपने साथ रखते थे। शत्रु सेना को पीछे धकेल देने पर उन्होंने कहा था कि "अब विजय हमारी पहुंच में दिखाई देती है, तो यह सोचना कि हम जीते जी भारत को

स्वतंत्र देख पाएंगे, हमारे लिए एक घातक गलती होगी। हममें से किसी के मन में स्वतंत्रता के मीठे फलों का आनंद लेने की इच्छा नहीं होनी चाहिए। हमारी एक ही इच्छा होनी चाहिए–एक शहीद की भांति मरने की इच्छा, ताकि भारत जी सके। खून से ही आजादी की कीमत चुकाई जा सकती है। तुम मुझे खून दो, मैं तुमसे आजादी का वादा करता हूँ।"

आजाद हिन्द फौज के सेनाधिकारियों के विरुद्ध कोर्ट मार्शल की कार्यवाही का भारतीय सेनाधिकारियों द्वारा एक स्वर से विरोध हुआ। 20 जनवरी 1947 को कराची में भारतीय वायुसेना ने हड़ताल कर दी जो लाहौर, मुम्बई और दिल्ली तक फैल गई। मुम्बई में हड़ताली नौसैनिकों ने अंग्रेज सेनाधिकारियों के विरुद्ध शस्त्र उठा लिये। ब्रिटेन के तत्कालीन प्रधानमंत्री क्लीमेंट एटली ने ब्रिटेन के हाउस ऑफ कामंस में कहा कि भारतीय सेना ब्रिटिश राजसत्ता के प्रति राजभक्त नहीं रही है, अतः हम भारत को स्वाधीन करने जा रहे हैं।

लार्ड एटली से किसी ने पूछा कि भारत छोड़ो आंदोलन के विफल हो जाने और ब्रिटेन तथा उसके मित्र राष्ट्रों के दूसरे महायुद्ध में विजयी हो जाने पर भी आपने भारत को स्वतंत्र करने का निर्णय क्यों लिया? उन्होंने कहा कि अनेक कारण थे जिनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारण नेताजी सुभाषचन्द्र बोस की भूमिका थी जिसने भारत की थल और नौसेना की ब्रिटिश सरकार के प्रति निष्ठा के आधार को ही पूरी तरह हिला दिया था। उनके अनुसार अहिंसक आंदोलनों का योगदान न्यूनतम था।

क्रांतिकारी आंदोलन में सक्रिय भागीदारी करने वाले मन्मथनाथ गुप्त और सुप्रसिद्ध इतिहासकार प्रोफेसर आर. सी. मजूमदार ने भी स्वतंत्रता प्राप्ति का श्रेय नेताजी को दिये जाने की पुष्टि की है। उन्होंने लिखा कि स्वतंत्रता प्राप्ति में नेताजी का योगदान गांधीजी से किसी भी प्रकार कम नहीं था, संभवतः वह उससे अधिक महत्वपूर्ण था।

उनकी मान्यता थी कि यदि संसार के व्यवहार से प्रभावित होकर मैं दुख निराशा आदि का अनुभव करूँ तो यह मेरी दुर्बलता है। जिसकी दृष्टि आकाश की तरफ लगी है उसे इस बात का कुछ पता नहीं रहता कि सामने पहाड़ है या कुआँ। इसी प्रकार जिसका लक्ष्य एक मात्र अपने उद्देश्य और आदर्श की तरफ होता है उसका अन्य विषयों की तरफ ध्यान नहीं जाता।

हमारे देश की विकास योजनाओं का श्रेय भी नेताजी को है। कांग्रेस का अध्यक्ष चुने जाने के बाद उन्होंने योजना आयोग का गठन किया था। योजना आयोग की

तरह सर विश्वेसरैया के नेतृत्व में विज्ञान परिषद भी उन्होंने ही गठित की थी। उन्होंने ऐसा रोल मॉडल तैयार किया था, जिसमें हर हाथ को काम, हर पेट को रोटी कैसे उपलब्ध हो, इसका अपूर्व फार्मूला दिया था।

उनके घर में सब प्रकार की सुख-सामग्री होने पर भी उन्होंने मानवता के लिए ही अपने जीवन को समर्पित कर दिया। **हजारों व्यक्तियों ने उनसे प्रेरणा ली।**

आज के युवकों को उनसे प्रेरणा लेनी चाहिए। अपने समय की सबसे बड़ी परीक्षा आई.सी.एस. पास करके भी उन्होंने अपना लक्ष्य दूसरों का उद्धार और उपकार ही रखा। इसी में अपनी शक्ति व योग्यता को लगाया। उनका यही संदेश है **"अपने आपको पहचान कर अपने कर्तव्य का पालन करो। हृदय को नवीन उत्साह से भरो, अपनी कल्पना पर नवीन आशा को स्थापित करो। यौवन के आनंद और शक्ति को अपनी एक-एक नस में संचारित करो। इससे तुम्हारा आंतरिक जीवन सूर्य की किरणों से प्रकाशित मार्ग के समान सुस्पष्ट और विकसित बन जाएगा। तुम जीवन की पूर्णता अनुभव करके धन्य बनो-यही मेरी विनीत आकांक्षा और प्रार्थना है।"**

गीताऽमृतम्

-श्री प्रबोधजी चतुर्वेदी

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम।।(18-78)

संजय ने कहा-जहाँ योगेश्वर भगवान श्री कृष्ण हैं और जहाँ गांडीव-धनुषधारी अर्जुन हैं, वहीं पर श्री, विजय, विभूति और अचल नीति है-ऐसा मेरा मत है।

लोकमान्य तिलक इस श्लोक का गूढ़ भावार्थ बतलाते हुए कहते हैं कि **जहां युक्ति और शक्ति दोनों एकत्रित होती हैं, वहाँ निश्चय ही ऋद्धि सिद्धि निवास करती है। कोरी शक्ति से अथवा केवल युक्ति से काम नहीं चलता।** जब जरासंध का वध करने के लिए मंत्रणा हो रही थी, तब युधिष्ठिर ने श्री कृष्ण से कहा **"बल अन्धा और जड़ है। बुद्धिमानों को चाहिए कि उसे मार्ग दिखलायें"** (सभापर्व 20/16)।

श्रीकृष्ण ने भी कहा "मुझमें नीति है और भीमसेन के शरीर में बल है।" अतः वे भीमसेन द्वारा जरासंध का वध युक्ति से कराते हैं। **केवल नीति बतलाने वाले को आधा-चतुर समझना चाहिए।**

अर्थात् **योगेश्वर यानी योग या युक्ति के ईश्वर और धनुर्धर अर्थात् योद्धा-ये दोनों विशेषण इस श्लोक में बड़े सार्थक हैं।** ○○

धर्म पर चलना ही कल्याण का मार्ग है

-आचार्य डॉ. संजयदेवजी

मजहब, सम्प्रदाय, मत, पन्थ, मार्ग इन सभी को धर्म समझ लिया गया है। किन्तु ये धर्म नहीं हैं । इन सबको बनाने वाले और चलाने वाले मनुष्य हैं और ये सभी किन्हीं विशिष्ट व्यक्तियों की मान्यताओं के साथ कुछ जनसमूहों द्वारा अपनाए गए हैं। प्रायः उन सभी के पहले उन-उन सम्प्रदायों के संचालकों के नाम जुड़े हैं। जैसे कबीर पन्थी, दादू पन्थी, नानक पन्थी, वैष्णव सम्प्रदाय, रामानुजी, राधास्वामी आदि।

धर्म तो वह है, जिसकी आवश्यकता समान रूप से समस्त मानव जाति को है। इसलिए धर्म का लक्षण **'यतोऽभ्युदय निःश्रेयससिद्धिः स धर्मः'**, ऐसा कहा गया है। अर्थात् जिससे किसी विशेष वर्ग का नहीं, अपितु समस्त मानव जाति का अभ्युदय हो, उन्नति हो तथा जिसके द्वारा सारी मनुष्य जाति के दुःखों की निवृत्ति हो जावे, अर्थात् मुक्ति (मोक्ष) हो जावे, वही धर्म है। इन दोनों बातों की कामना सृष्टि के समस्त मानव समाज को बनी रहती है। यदि धर्म के इस लक्षण को सभी समझ लें और मान लें, तो संसार के सारे झगड़े ही दूर हो जावें। वास्तव में धर्म तो झगड़ों को नष्ट करने वाला है। धर्म शब्द का अर्थ भी यही है-**'धारणाद् धर्म इत्याहुः।' सारा संसार जिसकी वजह से कायम रहता है, वही धर्म है।** उदाहरण के लिए सत्य, धर्म का एक अंग है। सत्य के बिना संसार का कोई कार्य सुचारु रूप से नहीं चल सकता। **सारे कार्य सत्य के सहारे ही होते हैं। असत्य भी सत्य का सहारा लेकर चलता है। सत्य वही है, जिसको आत्मा सत्य समझता है।** केवल वाणी से कहा हुआ सत्य, सत्य नहीं माना जा सकता।

दूध में मिला हुआ पानी सत्य रूप दूध का आश्रय लेकर के ही दूध की जगह बिक जाता है। झूठा मनुष्य भी सत्य की कसम खाकर ही असत्य को सत्य बनाने की कोशिश करता है। जिन व्यक्तियों में से, परिवारों में से, समाज और राष्ट्र में से सत्य उठ जाता है, वे व्यक्ति, परिवार, समाज और राष्ट्र नष्ट हो जाते हैं। इसीलिए कहा गया- **'न हि सत्यात्परो धर्मः नाऽनृतात्पातकं परम्।'** सत्य से बढ़कर कोई धर्म नहीं है और झूठ से बढ़कर संसार में कोई पाप नहीं है। झूठ का आश्रय लेकर यद्यपि लोग फलते-फूलते नजर आते हैं और संसार में बड़े ठाट-बाट के साथ रहते दिखाई भी देते हैं, किन्तु यह स्थिति थोड़े समय ही रहती है। महर्षि मनु कहते हैं-

अधर्मेणैधते तावत्ततो भद्राणि पश्यति।
ततः सपत्नान् जयति समूलस्तु विनश्यति।।

अधर्म करने वाला आदमी पहले खूब बढ़ता है। फिर उस सम्पत्ति से अनेक प्रकार के भोगों को भोगता है। उसके बाद धन की शक्ति से अपने शत्रुओं पर भी विजय प्राप्त कर लेता है, किन्तु फिर समूल नष्ट हो जाता है।

संसार में इस प्रकार के बहुत उदाहरण हैं, जिन्होंने झूठ बोलकर तथा बेईमानी से बड़ा धन कमाया, लोगों को मार करके भी धनी बन गये, किन्तु फिर वे ऐसे मिटे कि उन्हें कोई पानी देने वाला भी न रहा। वंश के वंश समाप्त हो गये। **'अन्यायोपार्जितं वित्तं दशवर्षाणि तिष्ठति।'** पाप और अन्याय से कमाया हुआ धन दस वर्ष ही टिकता है। कुछ इससे अधिक भी टिक जाता हो तो आश्चर्य नहीं। किन्तु इसका अन्त में परिणाम कभी अच्छा नहीं निकलता। अन्त में तो– **'सत्यमेव जयते नाऽनृतम्।'** अर्थात् **सत्य की ही जय होती है, झूठ की नहीं।**

इस समय हमारे समाज में असत्य का बड़ा बोलबाला है। हजारों व्यक्तियों में भी आपको कोई कोई ही सत्यवादी नजर आयेगा। झूठ के बाद बेईमानी का नम्बर आ जाता है। बेईमानी करने के लिए ही आदमी झूठ का आश्रय लेता है। बाजार में आपको चीजों में प्रायः मिलावट मिलेगी। स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त हानिकारक वस्तुएँ भी खाद्य पदार्थों में मिला दी जाती हैं। **दूध, घी, तेल आदि शुद्ध मिलने बड़े कठिन हो गये हैं। इसका परिणाम यह हुआ कि लोगों को अनेक प्रकार की बीमारियाँ हो गई हैं और स्पष्ट दीख रही हैं। लोगों का जीवन भी कष्टमय होकर औषधियों के सहारे ही चल रहा है। यह सारा प्रताप असत्य का ही है।**

ऋषियों और महापुरुषों ने सत्य और अहिंसा को ही अपनाकर लोगों को असत्य और हिंसक वृत्तियों से दूर रहने का उपदेश दिया और **'अहिंसा परमो धर्मः'** के द्वारा अहिंसा को परम धर्म बताया, जो अष्टांग योग के प्रथम अंग का प्रथम शब्द ही है– **'अहिंसा–सत्यास्तेय–ब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः।'** वास्तव में **जिससे अपना तथा दूसरों का कल्याण हो, वही धर्म है और धर्म पर चलना ही कल्याण का मार्ग है।**

दिव्ययुग सदन, 90 बैंक कॉलोनी, अन्नपूर्णा मार्ग, इन्दौर

सफलता केवल अंतिम कदम से नहीं मिलती, उसमें हर कदम का योगदान होता है। अतः हम हर कदम सोच समझ कर रखें। ○○

दुःख वरदान है

-श्री दामोदर भगेरिया

दुःख प्रभु द्वारा प्रदत्त सर्वश्रेष्ठ वरदानों में से एक है। अज्ञान के कारण मनुष्य इसका लाभ नहीं ले पाता। जितनी उन्नति दुःख में होती है, सुख में कदापि नहीं। दुःख के समान कोई गुरु नहीं है। दुःख से सयानापन व समझदारी आती है। जितना मनुष्य दुःख से सीख सकता है, उतना किसी पाठशाला में भी नहीं सीख सकता। विपत्ति ही सच्ची संपत्ति है, जो हरि का स्मरण कराती है, हरि की ओर ले जाती है। विपत्ति में तपने के बाद मनुष्य अधिक ज्ञानी और विनम्र होकर निकलता है। दुःख में गहराई है, सुख में उथलापन। दुःख आदमी को मांजता है। कुंती ने इसीलिए दुःख का वरदान मांगा था-

सुख के माथे सिल पड़े, हरि हृदय से जाय।
बलिहारी वा दुःख की, जो पल-पल नाम जपाय॥

वैसे भी कर्मफल के सिद्धांत के अनुसार दुःख भोगने से हमारे संचित पापों का क्षय होता है और सुख में हमारे पुण्य कम होते हैं। छह प्रकार के व्यक्ति सदैव दुःखी रहते हैं-ईर्ष्यालु, घृणा करने वाले, असंतोषी, क्रोधी, सदा शंका करने वाले व दूसरों पर निर्भर रहने वाले। इनमें से प्रथम पांच विकारों को दूर करने का प्रयास किया जाना चाहिए। छठे विकार का प्रमुख कारण है-पराधीनता। 'पराधीन सपनेहुँ सुखु नाहीं।' सुख व अपनी आवश्यकताओं के लिए दूसरों पर या वस्तुओं पर निर्भर रहना ही दुःख का कारण है।

वैसे दुःख के अन्य कारणों में दो प्रमुख कारण हैं-अभिमान व कामना। अभिमान समस्त दुःखों की जड़ है। जाने अनजाने यह नए-नए दुःखों की सृष्टि करता है तथा यह कामना पर निर्भर है।

मन में किसी संकल्प का आ जाना नई-नई कामनाओं को जन्म देता है। 'संकल्प प्रभवान् कामान्' (6-24)। पहले कामनाओं की पूर्ति हेतु प्रयास में दुःख, फिर पूर्ति में बाधा रूपी दुःख आते हैं। कामना पूर्ति में बाधक दुश्मन लगने लगते हैं। कामना व अभिमान एक दूसरे पर आश्रित हैं। सच्चा सुख तो त्याग में ही है। 'त्यागात् शांतिरनंतरम्।' भगवान् ने कई प्रकार के दुःखों को अपरिहार्य बताया है, जैसे मृत्यु, जो टलती नहीं। अतः शोक से कोई लाभ नहीं।

परिस्थिति जो जड़ है, स्वयं में सुख या दुःख देने वाली नहीं होती। हम परिस्थिति से जुड़कर सुखी या दुःखी होते हैं। एक परिस्थिति जो किसी के लिए दुःखदायी है वही दूसरे के लिए सुख का कारण हो सकती है।

दुःख का कारण कोई और नहीं हो सकता। वह तो परिस्थिति ही पैदा कर सकता है। इसी प्रकार कोई दूसरा दुःख मिटा भी नहीं सकता, न सुख का कारण बन सकता है। **'काहु न कोउ सुख दुख कर दाता।'** **परिस्थितियों को ईश्वर का प्रसाद समझकर स्वीकार करने से ही दुःख की अनुभूति कम होती है। भय और आशा दोनों ही दुःख की जड़ हैं।**

खोजो, खुद में हीरा

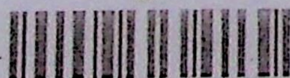
-प्रो. अरिंदम चौधरी
('दैनिक भास्कर' से साभार)

हर इंसान में हीरा छुपा हुआ है। जरूरत है उसे तलाश कर तराशने की। यह काम गीता को पढ़कर और उसके रहस्य को समझकर किया जा सकता है। सफलता का मंत्र और रहस्य गीता में छिपा हुआ है। इसलिए गीता की **पूजा ही नहीं करें बल्कि उसमें दिए हुए मंत्रों को अमल में लाएं। दुनिया के दूसरे देश वेद और उपनिषद का अनुवाद कर उन्हें आत्मसात् कर रहे हैं, जबकि हम इसे लाल कपड़े में लपेट कर पूजा घर में रखे हुए हैं।**

गीता सफलता की महत्वपूर्ण कुंजी है। 'कर्म करो, फल की चिंता मत करो।' जो भी करो जुनून के साथ करो, मन में सकारात्मक ऊर्जा रखो। कभी सिद्धांतों से समझौता न करो। **असफलताओं से डरो मत। खुद को प्रोत्साहित करते रहो। हमेशा बेहतर प्रदर्शन का प्रयास करो।** कार्य को पूरी पारदर्शिता के साथ करो। **'राष्ट्र भावना' से मन का ओतप्रोत होना जरूरी है। सोचो कि हमारे इस कार्य से देश को क्या मिलेगा?**

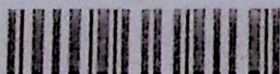
पालक जौहरी बनें, पालक जौहरी की भूमिका निभाएं। बच्चों पर अपनी इच्छा न लादें। इससे बच्चों का जुनून खत्म हो जाता है। अंत में उन्हें कुछ नहीं सूझता है। पढ़ाई के बाद विदेश जाकर बसने से देश का नुकसान होता है। **सफलता के साथ ही मन में राष्ट्र के प्रति प्रेम होना जरूरी है। इसके** [illegible] ?

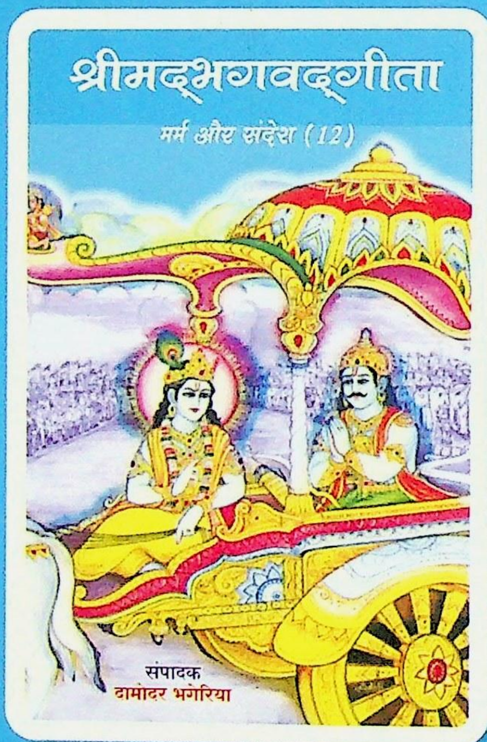
(प्रस्तुति : श्री विश्वनाथ सिंहानिया, जयपुर)



कुछ नहीं सूझता है। पढ़ाई के बाद विदेश जाकर बसने से देश का नुकसान होता है । सफलता के साथ ही मन में राष्ट्र के प्रति प्रेम होना जरूरी है । इसके [illegible] ?

(प्रस्तुति : श्री विश्वनाथ सिंहानिया, जयपुर)





पुस्तक प्राप्ति स्थान

दामोदर भगेरिया

84, गीजगढ़ विहार, हवा सड़क, जयपुर-302006

भगेरिया मशीनरी स्टोर्स

13, एम.जी.डी. मार्केट, जयपुर-302002

फोन : 0141-2212510 * मो. : 09351317641